मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 124 ● वर्ष 13, अंक 12 ● फ़रवरी 2024 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

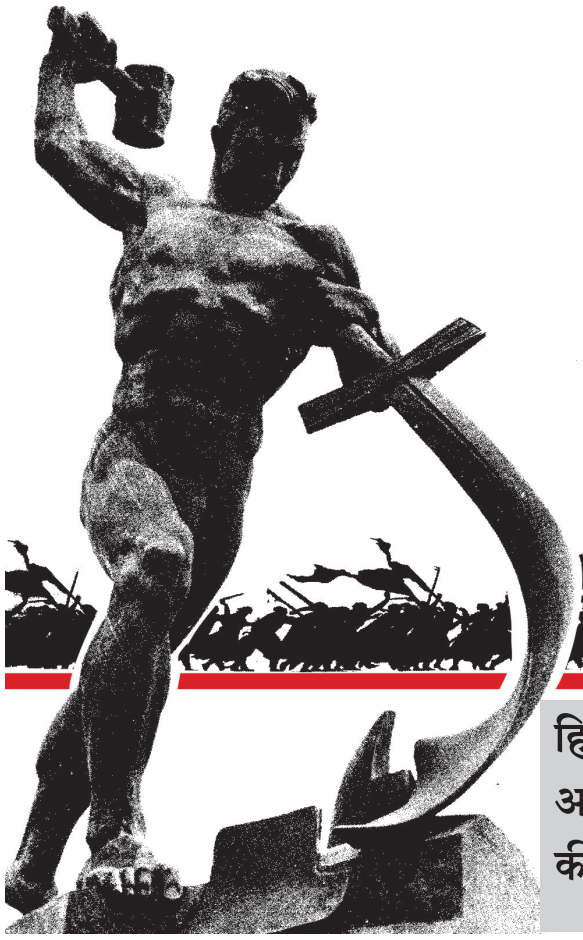

हिटलर की तर्ज़ पर अरबों रुपये बहाकर मोदी की महाछवि का निर्माण 4

गाज़ा वह फ़ीनिक्स पक्षी है जो अपनी राख से फिर उठ खड़ा होगा! 5

इस उन्माद में मत बहिए! आइए अपने सही इतिहास को जानें! 7

राम मन्दिर से अपेक्षित साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करने में असफल मोदी सरकार अब काशी-मथुरा के नाम पर साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की फ़िराक़ में

सम्पादकीय अग्रलेख

22 जनवरी को राम मन्दिर के उद्घाटन के ज़रिये देश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने और तनाव फैलाने का काम भाजपा और मोदी सरकार अपेक्षित तरीके से नहीं कर पाये। जिस प्रकार का साम्प्रदायिक माहौल और लहर बनाने की उम्मीद संघ परिवार के नेतृत्व को थी, वैसी नहीं बनी। सच है कि जनता के विचारणीय हिस्से के लिए यह एक और छुट्टी का दिन था। उत्तर प्रदेश में तो योगी सरकार ने बाक़ायदा सरकारी छुट्टी की घोषणा कर दी थी। सच है कि संघ परिवार के तमाम संगठनों द्वारा गली-मुहल्लों में जा-जाकर राम मन्दिर के झण्डे घरों, दुकानों आदि पर लगाये गये थे और आंशिक रूप से अपनी आस्था के कारण और विशेष तौर पर मोदी सरकार और योगी सरकार व अन्य भाजपा राज्य सरकारों द्वारा पैदा किये गये भय के माहौल के कारण उस पर किसी ने आपत्ति भी नहीं की (कर भी नहीं सकता था!)। कई इलाकों में भड़काऊ कार्रवाई के तौर पर मुसलमानों के घरों या उनकी दुकानों पर भी संघी लम्पटों ने राम मन्दिर के झण्डे लगा दिये। इन सबसे जो दृश्य पैदा हुआ उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि लोगों में इसका काफ़ी असर है। लेकिन सच्चाई यह है कि इस दृश्य का ज़्यादा हिस्सा संघ परिवार व उसके अनुषंगी संगठनों द्वारा प्रायोजित था, जनता ने स्वत:सफूर्त ढंग से ऐसा कोई दृश्य नहीं पैदा किया था। इस बात को संघ परिवार भी समझ रहा था।

राम मन्दिर के उद्घाटन के जश्न के नाम पर देश के अलग-अलग इलाकों में बजरंग दल, विहिप, अभाविप जैसे संघी गुण्डा गिरोहों के टुटपुँजिया तत्वों, प्रापर्टी डीलरों, ठेकेदारों, जॉबरों, व्यापारियों, दलालों ने अपनी डेढ़-दो सौ सीसी की बाइकों, कारों, जीपों आदि पर जो लम्पटई और गुण्डागर्दी की उसके बारे में ज़्यादा बताने की आवश्यकता नहीं है। फ़ासीवादियों की "मर्यादा", धार्मिकता, और "चाल-चेहरा-चरित्र" ऐसी हरक़तों से अच्छी तरह से उजागर हुआ। ऐसे माहौल के बारे में आप विश्वस्नीय जानकारी चाहते हैं, तो समाज के दमित तबकों से बात करें, जैसे कि आम मेहनतकश लोग, दलित, स्त्रियाँ, आदि। धर्मध्वजाधारियों द्वारा ऐसी धार्मिक लम्पटई के प्रदर्शन के दौरान वे कैसा महसूस करते हैं? आपको इस धार्मिकता की, नैतिकता की दुहाई की और इनके राष्ट्रवाद की असलियत पता चल जायेगी।

देश में कोई भारी लहर है और देश में माहौल "राममय" हो गया है, ऐसा विचार जनता में बिठाने में गोदी मीडिया के सारे चैनल नंगई, बेशर्मी और दंगाई तरीके से लगे हुए थे। एक चैनल ने तो अपनी गाड़ी पर लिख रखा था : 'मन्दिर वहीं बनाया है।' यानी, वह भाजपा का प्रवक्ता बना बैठा था। देश का न्यायालय सबकुछ चुपचाप देख रहा था। बाकी मीडिया घरानों का भी उन्नीस-बीस से ऐसा ही हाल था। लेकिन भूखे आदमी को कितने भी धार्मिक तरीके से बताया जाय कि भूख मिथ्या है, माया है, वह मान नहीं पाता क्योंकि यह कम्बख़्त भूख बड़ी ठोस और ज़िद्दी चीज़ होती है। जैसा कि प्रसिद्ध लोकोक्ति में कहा गया है : *भूखे भजन न होय गोपाला, ले तेरी कण्ठी ले तेरी माला।*

बहरहाल, हज़ारों करोड़ रुपये बहाकर संघ परिवार, भाजपा और मोदी सरकार राम मन्दिर की प्राण-

(पेज 9 पर जारी)

कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न और मण्डल कमीशन की राजनीति

● विवेक

भारत रत्न,पद्म भूषण, पद्म श्री, आदि पुरस्कारों का वैसे तो आम मेहनतकश जनता के लिए कोई विशेष महत्व नहीं है। चूँकि भारत रत्न और इस प्रकार के पुरस्कार प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति की अनुशंसा पर दिये जाते है, अत: सत्ता में रहने वाली पार्टी अक्सर अपने किसी पुराने नेता या उनकी राजनीति से सहमति रखने वाले व्यक्तियों को भारत रत्न देकर अपनी साख मज़बूत करने का प्रयास करती है। एक समय के बाद, इन पुरस्कारों से सम्मानित व्यक्तियों का ज़िक्र सामान्य ज्ञान की किताबों तक सीमित हो जाता है। लेकिन जितनी चतुराई से मोदी सरकार ने इन पुरस्कारों का इस्तेमाल किया है, वैसा शायद पहले कभी नहीं हुआ है।

राम मन्दिर उद्घाटन के तुरन्त बाद कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न देने की घोषणा करना भोले-भाले लोगों को आश्चर्यजनक फ़ैसला लग सकता है, पर जो बिहार में भाजपा की राजनीति को देख रहे हैं, उनके लिए यह सामान्य-सी बात थी। भाजपा पिछड़ी व अत्यन्त पिछड़ी जातियों के बीच पिछले दो दशक से अपना जनाधार बढ़ाने में एड़ी-चोटी की जोर लगा रही है। राज्य में वह अपने उस इतिहास से ख़ुद को दूर करना चाह रही है, जिसमें उसे केवल तथाकथित उच्च जाति सवर्णों की पार्टी के तौर पर देखा जाता था। इसमें एक हद तक उसे कामयाबी भी मिली है, पर अभी भी पिछड़ी व अतिपिछड़ी जातियों के वोट अधिकांशत: राजद व वाम दलों के बीच बँट जाते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुये 2024 के लोकसभा चुनाव में पिछड़ी और अतिपिछड़ी जातियों का वोट बैंक साधने के लिए ही कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न देने का फैसला लिया गया है। कर्पूरी ठाकुर उत्तर भारत में विशेषकर बिहार व झारखण्ड में पिछड़ी जातियों के नेता के तौर पर अब भी याद किये जाते हैं। सीधे शब्दों में कहा जाये तो भाजपा व संघ ने पहले राम मन्दिर उद्घाटन के ज़रिये कमण्डल की राजनीति को साधा और अब, कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न देकर मण्डल की राजनीति में भी सेंधमारी करने का प्रयास कर रही है।

भारतीय बुर्जुआ राजनीति में दो शब्दों, मण्डल और कमण्डल को अक्सर एक दूसरे के विलोम के तौर पर प्रदर्शित किया जाता है। लेकिन वास्तव में दोनों ही राजनीतिक धाराओं का यह अन्तर केवल सतही है, और वस्तुत: ये एक दूसरे के पूरक का काम करती हैं। पिछले 40 वर्षों के राजनीतिक इतिहास ने तो यही दर्शाया है कि दोनों ही धाराएँ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आज भारत में कमण्डल की राजनीति के जरिये फ़ासीवाद की विषबेल भी मण्डल की राजनीति के कारण बनी ज़मीन पर ही पनपी है। कभी मण्डल की राजनीति के जरिये कमण्डल का जवाब देने की बात करने वाले नीतीश कुमार व शरद यादव भी

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

देश के मज़दूर हैं

देश के मज़दूर हैं, बड़े मजबूर
मन में भरी कसक है, करने को कुछ विवश हैं
सपने ही गढ़ पाते, आगे बढ़ नहीं पाते,
बच्चे पढ़ नहीं पाते, कुछ वो कर नहीं पाते
रूखी-सूखी खाकर के, जीवन बिताते
रहते निगाहों में ख्वाब ही सजाते
होते न पूरे, जो अधूरे ही रह जाते।
मगर पार्टियों में, मालिक हैं नोट लुटाते
दया नहीं दिलों में, होते हैं क्रूर
देश के मज़दूर हैं बड़े मजबूर।
बढ़ो एक साथ, मिलाओ अब हाथ,
दे दो जवाब, बोलो इंकलाब,
सही मेहनताना दे दो, हमें अपने काम का
दिलासा नहीं चाहिए, किसी भी नाम का,
लिख के दे देती है, कोई भी सत्ता,
मिलता नहीं पिफर भी, मँहगाई भत्ता,
बिना मज़दूर के मालिक अधूरे
जिनके बिना काम होंगे न पूरे।
मेहनत हैं करते, दिन भर भरपूर
फिर भी मजबूर, देश के मज़दूर

ये है हमारा मज़दूरों का एक दल

ये है हमारा मज़दूरों का एक दल,
टूटे बिखरों में नहीं, होता एकता में बल।
कल-कल करते रहकर हम, पीछे हटते जाते हैं,
अपने अध्किरों से हम, वंचित ही रह जाते हैं।
रोटी कपड़ा से बढ़कर, कुछ और ना कर पाते हैं,
अपने नन्हें बच्चों को भी, काम पर लगते हैं,
कम मज़दूरी के कारण ही, ज्यादा ना पढ़ पाते हैं।
और हमारे जैसे ही, एक मज़दूर बन जाते हैं।
कब तक जीते जायेंगे हम, मजबूरी का ये जीवन,
और भी कुछ करने को, क्या करता नहीं हमारा मन,
अपने भी कुछ सपने हैं, अपने भी कुछ अरमां हैं,
लेकिन बनकर रह जाते हैं, केवल खाली सपना हैं।
आओ मिलकर एक साथ, अब आगे बढ़कर आयेंगे,
और मालिकों से अपना हक, लेकर के दिखलायेंगे।
नहीं मानते हैं वो, तो काम बन्द कर जायेंगे
उनकी तानाशाही पे ना, अपना शीश झुकायेंगे।
कभी तो होगा पूरा, अपना कार्य अधूरा
कभी तो होंगे कल, हम मज़दूर सफल।।

– एक मज़दूर परिवार
पवन शर्मा (गुडडू) तथा सरस्वती शर्मा
करावल नगर, दिल्ली-94

मैं बिगुल का नियमित पाठक हूँ। मुझे बिगुल के लेख बहुत अच्छे लगते हैं। यह अखबार बहुत सराहनीय काम कर रहा है। नकली कम्युनिस्टों के असली चरित्रा के बारे में बिलकुल सच बताया जाता है। मज़दूर इतिहास के बारे में और कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित मज़दूरों के अपने श्रम से अलगाव के बारे में लेख मुझे काप़फी अच्छे लगे।

– रामप्रकाश, गोरखपुर

अगर हम अपने अधिकारों को जानते हैं और एकजुट हो उसके लिए लड़ने को तैयार हैं तो इतिहास इस बात का गवाह है कि बड़ी से बड़ी ताकत को भी हमने घुटने टेकने को मजबूर किया है। इसलिए मैं हमेशा अपने मजदूर साथियों से कहता हूँ कि अगर हम पान, बिड़ी, गुटके पर रोज 5-10 रुपए खर्च कर सकते हैं तो क्या हम महीने में एक बार दस रुपए खर्च बिगुल अखबार नही पढ़ सकते जो हमारी माँगो और अधिकारों की लड़ाई लड़ रहा है। इसलिए साथियों भले ही अपने वेतन में हर महीने कुछ कटौती करनी पड़े लेकिन जिस उद्देश्य को लेकर यह अखबार निकाला जा रहा है, उसमें हमें भी अपना सहयोग जरूर देना चाहिए।

– एजाज़, वापी, गुजरात

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल के सभी पाठकों के सूचनार्थ

मज़दूर बिगुल के फ़ेसबुक पेज (facebook.com/mazdoorbigul) को किसी विदेशी हैकर ने हैक कर लिया है और उस पर कुछ फ़ालतू पोस्ट करना भी शुरू कर दिया है। फ़ेसबुक को सभी साक्ष्यों सहित कई बार लिखने के बावजूद उस पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी है। अन्ततः हमने मज़दूर बिगुल का नया फ़ेसबुक पेज बनाया है - facebook.com/mazdoorbigul1 (अन्त में '1' जोड़ा गया है)। आपसे आग्रह है कि पुराने पेज से आने वाली पोस्ट पर ध्यान न दें और हमारे नये पेज को फ़ॉलो कर लें।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul1

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोनः 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

नगर निगम गुड़गाँव के ठेका ड्राइवरों को हड़ताल की बदौलत आंशिक जीत हासिल हुई

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) के साथी हड़ताल व क़ानूनी संघर्ष में साथ डटे रहे!

● शाम मूर्ति

पिछली 25 जनवरी की शाम को एक महीने का वेतन खाते में जमा करवाने पर तथा आगामी 5 फ़रवरी को 2 महीने के वेतन को खाते में जमा करने के वायदे पर ठेका ड्राइवरों ने फ़िलहाल हड़ताल को स्थगित करके काम दोबारा शुरू कर दिया है।

क्या है ठेका ड्राइवरों का पूरा मामला?

अनेक ठेका ड्राइवर नगर निगम के लिए कई सालों से घरों से कूड़ा उठाने वाली गाड़ी चला रहे हैं जिसमें 13 पुराने ड्राइवर भी शामिल हैं। लेकिन पिछले सितम्बर से 4 महीने (जनवरी से पाँचवाँ महीना भी पूरा होना था) के बकाया वेतन का भुगतान नहीं किया गया था। साथ ही अप्रैल 2023 से पी.एफ. के लिए उनके वेतन से कटौती के बावजूद भविष्य निधि (पी.एफ.) खाते में पैसा नहीं जमा किया गया था। ठेका ड्राइवरों द्वारा इकोग्रीन ठेका कम्पनी के अधिकारियों से बार-बार तक़ाज़ा करने के बावजूद बकाया भुगतान न होने की सूरत में मजबूरन हड़ताल पर जाना पड़ा था।

ठेका ड्राइवरों ने पहली बार 10, 11 और 12 जनवरी को तीन दिन की हड़ताल की जिस पर ठेका कम्पनी के अधिकारियों द्वारा आगामी एक हफ़्ते में वेतन उनके खाते में डालने के वायदे पर ठेका ड्राइवरों ने हड़ताल को स्थगित कर दिया गया था। लेकिन वायदे के मुताबिक 19 जनवरी को वेतन खाते में नहीं आया जिसके चलते मज़दूर अपने के कमरे का किराया, राशन का पैसा, बच्चों के स्कूल की फ़ीस नहीं चुका पा रहे थे। तब ठेका ड्राइवर अपनी माँगों के लिए 23, 24, 25 जनवरी को दोबारा हड़ताल पर चले गये।

गौरतलब है कि इस बार जनवरी का एक महीने के वेतन का मैसेज जो ड्राइवरों के फ़ोन पर आया है, उसमें वेतन भेजने वाली ठेका कम्पनी का नाम अचानक ही बदल गया है। इस बार क्यूब बॉयो एनर्जी प्राईवेट द्वारा ड्राइवरों के खाते में वेतन डाला गया है। जबकि ठेका ड्राइवर कई सालों से इकोग्रीन एनर्जी प्राईवेट लिमिटेड के तहत काम कर रहें हैं। ख़ैर! आगामी दिनों में इस मामले की पूरी असलिसत सामने आयेगी कि कब नगर निगम ने कूड़ा उठाने का ठेका, इकोग्रीन ठेका कम्पनी से बदल कर बॉयो क्यूब एनर्जी को दिया है?

यह भी अजीबोगरीब बात है कि मौके पर जिन अधिकारियों ने 25 जनवरी की शाम तक उनके खाते में एक महीने के वेतन का भुगतान होने और आगामी 05 फ़रवरी तक दो और महीने का वेतन खाते में आने का वायदा किया है, वे सब इकोग्रीन एनर्जी प्राईवेट लिमिटेड के पहले के ही अधिकारी हैं। जबकि खाते में तो पैसे का भुगतान बायो क्यूब एनर्जी कम्पनी द्वारा किया गया है। यानी वही पुराने अधिकारी लेकिन कम्पनी का नाम चुपचाप बदल गया! ख़ैर! फ़िलहाल इस तरह बकाया वेतन की अदायगी किस्तों में करने के तथाकथित वायदे पर ड्राइवरों ने 10 दिन के लिए हड़ताल को दूसरी बार स्थगित कर दिया था।

वेतन भुगतान सम्बन्धी श्रम क़ानून क्या कहते हैं?

वेतन भुगतान अधिनियम 1936 की धारा (3) के तहत प्रमुख नियोक्ता द्वारा वेतन भुगतान की जिम्मेदारी है। इसकी धारा 4 के अनुसार वेतन को एक महीने से ज़्यादा देर तक वेतन नहीं रोका जा सकता है; (धारा 5) के तहत एक संस्थान में 1000 मज़दूरों से कम होने की सूरत में महीने की 07 तारीख़ तक खाते में पैसा जमा करना होता है। साथ ही देर से भुगतान होने की सूरत में (धारा 15) के तहत इसके लिए ब्याज सहित पैसा जमा करने का क़ानूनी प्रावधान है। उल्लंघन होने की सूरत में आर्थिक दण्ड (जुर्माने) और कारावास का दण्ड - दोनों तरह से दण्ड देने का भी क़ानूनी प्रावधान है।

वहीं संविदा/अनुबंध श्रम (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम, 1970, 1971 के (धारा 21- सी व डी) के मुताबिक अगर ठेकेदार द्वारा भुगतान समय पर न होने और पूरा नहीं होने पर वेतन के भुगतान को सुनिश्चित करने व वेतन के भुगतान की मुख्य ज़िम्मेदारी प्रधान नियोक्ता की ही होगी। प्रधान नियोक्ता इस भुगतान की भरपाई के लिए ठेकेदार के खाते से कटौती कर सकता है। ऐसे में ठेका ड्राइवरों का प्रधान नियोक्ता नगर निगम गुड़गाँव है जिसने इकोग्रीन (अब बॉयो क्यूब एनर्जी) को घरों से कूड़ा उठाने का ठेका दिया है।

यह भी ज्ञात रहे कि क़रीब आठ महीनों से पी.एफ. का पैसा जो हर महीने मज़दूरों के वेतन से कटौती के बावजूद भी इकोग्रीन कम्पनी ने उनके खाते में जमा नहीं किया है। भविष्य निधि एक्ट (1952) के अनुसार व अन्य क़ानूनी प्रावधानों के तहत यह एक आपराधिक कार्यवाही है जिसके लिए आर्थिक जुर्माने से लेकर कारावास यानी दोनों तरह के दण्ड का प्रावधान है।

वहीं वेतन और पी.एफ. के भुगतान न होने के चलते न सिर्फ़ ठेका ड्राइवर बल्कि ठेके पर काम करने वाले सफ़ाई, सिक्योरिटी गार्ड, मैकेनिक सभी हड़ताल में शामिल हुए थे। वैसे तो इस इकोग्रीन कम्पनी द्वारा ठेके पर कार्यरत मज़दूरों के श्रम कानूनों के सभी अधिकारों की जिस तरह से खुलेआम धज्जियाँ नगर निगम गुड़गाव की नाक के नीचे उड़ाई जा रहीं है। ज़ाहिर है, यह बिना प्रशासन, सरकार और ठेकेदार की मिलीभगत के सम्भव नहीं है। इसके लिए ठेका ड्राइवरों को इस सच्चाई को समझना होगा और आने वाले दिनों में इसके लिए कमर कसनी होगी। साथ ही विभिन्न सेक्टर के मज़दूरों के साथ इस मुद्दे पर एकता बढ़ाकर आगे बढ़ना होगा।

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री काण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) के कार्यकर्ताओं ने नगर निगम के ठेका ड्राइवरों के बुनियादी, जायज़ व क़ानूनी अधिकारों को जल्द से जल्द लागू करवाने के संघर्ष में सक्रिय समर्थन और धरनास्थल पर रहकर भागेदारी की। ठेकेदार चाहे ग्रीन एनर्जी गुड़गाँव फ़रीदाबाद प्राइवेट लिमिटेड या नयी ठेका कम्पनी - बॉयो क्यूब एनर्जी लिमिटेड कम्पनी हो, यानी जो भी हो। AICWU कम्पनी/नियोक्ताओं/ठेकेदारों द्वारा तानाशाही व भटकाने के रवैये की सख़्त निंदा करती है। श्रम विभाग और गुड़गाँव नगर निगम प्रशासन द्वारा ठेका कम्पनी द्वारा श्रम क़ानूनों के उल्लंघन और उसके तानाशाही व्यवहार पर तुरन्त सख़्त से सख़्त कार्यवाही करने की माँग करती है। AICWU आगे भी ठेका ड्राइवरों के बुनियादी जायज मांगों के संघर्ष में उनका साथ देगी।

भारत जोड़ो न्याय यात्रा की असलियत

● केशव

'भारत जोड़ो यात्रा' के बाद पिछले 14 जनवरी से कांग्रेस ने राहुल गाँधी के नेतृत्व में 'भारत जोड़ो न्याय यात्रा' शुरू की है। इस यात्रा में जहाँ एक ओर अपनी अवसरवादी राजनीति का परिचय देते हुए तमाम नक़ली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ कांग्रेस की गोद में जाकर बैठ चुकी हैं, वहीं लेफ़्ट लिबरल जमात भी राहुल गाँधी की नैया पर सवार होकर फ़ासीवाद के ज्वार से पार पाने के शेखचिल्ली के सपने देख रही है। 6,700 किलोमीटर लम्बी यह यात्रा पिछले 14 जनवरी को मणिपुर से शुरू हुई जो कि आने वाले मार्च के महीने में मुम्बई में ख़त्म होगी। फ़ासीवादी निज़ाम किस प्रकार सारे पूँजीवादी जनवादी आधिकारों की धज्जियाँ उड़ा देता है, इसका नमूना भी हमें पिछले 14 जनवरी को देखने को मिला, जब मणिपुर की बिरेन सरकार ने राहुल गाँधी की यात्रा को इम्फ़ाल से शुरू करने से रोक दिया। सर्वहारा वर्ग किसी के भी जनवादी अधिकार का समर्थन करता है, सिवाय फ़ासीवादियों के जो जनवाद के धुर विरोधी हैं। वजह यह कि जब भी फ़ासीवादी जनता के जनवादी अधिकारों पर हमला करते हैं, तो सर्वहारा वर्ग की चुप्पी फ़ासीवादियों के "दमन के अधिकार" का वैधीकरण बन जाती है और इस "अधिकार" का सर्वाधिक इस्तेमाल तो हमेशा हम मज़दूरों के ही ख़िलाफ़ होता है। राहुल गाँधी को अपनी यात्रा निकालने का पूरा अधिकार है और निश्चय ही भाजपा सरकार अपनी घबराहट में उसमें जगह-जगह व्यवधान डालने का प्रयास कर रही है।

लेकिन सवाल यह है कि क्या "आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक न्याय" की बात करती हुई इस यात्रा से मज़दूर वर्ग को फ़ासीवादी निज़ाम को शिकस्त देने की रत्तीभर भी उम्मीद करनी चाहिए या नहीं? हमें यह समझ लेना चाहिए कि आज भारत में कोई भी पूँजीवादी दल इस फ़ासीवादी उभार को निर्णायक तौर पर परास्त नहीं कर सकता है। इनकी वजहों पर हम नीचे चर्चा करेंगे।

अगर हम यह मान भी लें कि इण्डिया गठबन्धन इस बार चुनाव में एनडीए को हरा दे, जिसकी सम्भावना काफ़ी कम है, फिर भी कांग्रेस कुछ धीमी रफ्तार से और कुछ कल्याणवाद के साथ अन्ततः उन्हीं आर्थिक नीतियों को लागू करेगी, जिसे भाजपा धड़ल्ले से, नंगई से और तानाशाहाना तरीके से लागू कर रही है। कांग्रेस ने कई जगहों पर इस बात को स्पष्ट किया है। साथ ही कांग्रेस का पिछला कार्यकाल और इस पार्टी को पूँजीपतियों से मिलने वाली फण्डिंग इस बात को पुख़्ता करने के लिए काफ़ी है, हालाँकि आज आर्थिक संकट के दौर में भाजपा और मोदी पूँजीपति वर्ग के चहेते हैं और उनको मिलने वाली फण्डिंग के सामने कांग्रेस को मिलने वाली फण्डिंग आपको सरस्वती पूजा के चन्दे जैसी लगेगी। लेकिन यह भी सच है कि पूँजीपति वर्ग कांग्रेस को भी आर्थिक समर्थन दे रहा है। पूँजीपति वर्ग का पूँजीवादी बहुदलीय जनवाद में यह चरित्र होता है, कि किसी भी वक्त किसी एक बुर्जुआ राजनीतिक नुमाइन्दे को वरीयता देते हुए वह कई बुर्जुआ राजनीतिक नुमाइन्दों को पालता है, जिन्दा रखता है। फ़ासीवाद आज उसकी ज़रूरत है। इसके बावजूद अगर कोई कांग्रेस से जनता के लिए "आर्थिक न्याय" की उम्मीद करता है, तो वह आज भी किसी मुग़ालते में जी रहा है। इसके अलावा ऐसा हो सकता है कि जनवादी आधिकारों पर आज यह फ़ासीवादी निज़ाम जो हमले कर रहा है इसमें थोड़ी कमी आये, लेकिन आज के उदाहरण भी इसके कुछ अच्छे संकेत नहीं दे रहे हैं। हाल में ही तेलंगाना में, जहाँ कांग्रेस सरकार सत्ता में आयी है, राम मन्दिर के लिए संघ द्वारा फैलाये गये उन्मादी शोर के बीच बाबरी मस्जिद विध्वंस की असलियत दिखाती हुई एक फ़िल्म स्क्रीनिंग को संघ द्वारा रोकने की कोशिश की गयी। इसके बाद तेलंगाना पुलिस ने उल्टा स्क्रीनिंग आयोजित करने वाले लोगों पर ही धाराएँ लगा दीं। इसलिए हमें यह समझना होगा कि आर्थिक संकट के इस दौर में पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े को बरकरार रखने के लिए फ़ासीवाद फ़र्क के बावजूद कांग्रेस भी जनता पर दमन का चक्र चलाने से पीछे नहीं हटेगी।

दूसरा, इस बात की भी उम्मीद करना हास्यास्पद होगा कि कांग्रेस के सत्ता में आने के बाद सड़कों पर संघी तत्त्वों की गुण्डागर्दी कम हो जायेगी, क्योंकि जनता की एकजुटता पर लगाम लगाने के लिए कांग्रेस को भी मज़हबी राजनीति की ज़रूरत पड़ती है। और राम मन्दिर का ताला खुलवाने से लेकर ऐसे तमाम उदाहरण मौजूद हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं। अगर वह सीधे ऐसी मज़हबी राजनीति नहीं करती, तो वह साम्प्रदायिक राजनीति करने वाली फ़ासीवादी शक्तियों पर कोई निर्णायक रोक भी नहीं लगाती। क्योंकि पूँजीपति वर्ग को सत्ता में या सत्ता से बाहर फ़ासीवादी शक्तियों की आवश्यकता है क्योंकि ये शक्तियाँ राजनीतिक तौर पर जनता की सबसे बड़ी दुश्मन हैं। कर्नाटक चुनाव से पहले कांग्रेस ने यह वायदा किया था कि वह बजरंग दल और विहिप जैसे संगठनों को बैन करेगी, लेकिन सत्ता में पहुँचने के बाद कांग्रेस सरकार ने ऐसा कुछ नहीं किया। सत्ता में आने के बाद कांग्रेस सरकार भी फ़ासीवादी गिरोह को ज़ंजीर में बंधे कुत्ते की तरह इस्तेमाल करेगी। इसके साथ ही यह भी समझना ज़रूरी है कि अगर इस बार चुनाव में कांग्रेस अगर सत्ता में आ भी गयी तो आर्थिक संकट के गहराने के साथ भारत का पूँजीपति वर्ग आने वाले चुनावों में फिर से फ़ासीवादी ताक़तों का ही चयन करेगा और फ़ासीवाद पहले से अधिक आक्रामक रूप में सामने आयेगा। हालाँकि यह बात दीगर है कि इण्डिया गठबन्धन ख़ुद ही लड़खड़ाते हुए चल रहा है और उसके जीतने की उम्मीद फिलहाल कम दिख रही है।

आज के दौर में किसी भी रूप में कांग्रेस या किसी पूँजीवादी पार्टियों के गठबन्धन नेतृत्व में फ़ासीवादी ताक़तों को निर्णायक रूप में परास्त नहीं किया जा सकता। हाँ, कांग्रेस के सत्ता में आने के बाद एक सम्भावना यह हो सकती है कि क्रान्तिकारी ताक़तों को कुछ मोहलत मिले। लेकिन यह भी पक्के तौर पर नहीं कहा जा सकता। मज़दूर वर्ग को यह समझ लेना चाहिए कि फ़ासीवाद कभी भी चुनाव के रास्ते से नहीं हराया जा सका है। यह टुटपुँजिया वर्ग का एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन होता है, जो बड़ी पूँजी की सेवा करता है। इसलिए चुनावी रास्ते से इसे किसी भी रूप में नही हराया जा सकता। इसके लिए मज़दूर वर्ग को स्वतन्त्र क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण के साथ एक जुझारू क्रानितकारी जनआन्दोलन खड़ा करना होगा। तभी फ़ासीवाद को निर्णायक तौर पर शिकस्त दी जा सकती है। आज इसकी शुरुआत व्यापक मेहनतकश जनता को रोज़गार और महँगाई, शिक्षा और चिकित्सा के मसले पर अपने जुझारू जनान्दोलनों को खड़ा करने से करनी होगी।

हिटलर की तर्ज़ पर अरबों रुपये बहाकर मोदी की महाछवि का निर्माण

● प्रियम्वदा

फ़ासीवादी प्रचार का मूलमन्त्र होता है 'एक झूठ को सौ बार दोहराओ ताकि वह सच बन जाए'। फ़ासीवादी राजनीतिज्ञ झूठ को दोहराने और आम जन में मिथकों को कॉमन सेंस के रूप में स्थापित करते हैं। हिटलर के प्रचार मन्त्री गोएबल्स ने एक झूठ को सौ बार दोहराने की नीति का बख़ूबी इस्तेमाल कर हिटलर का प्रचार किया। भारत में भाजपा और संघ परिवार ने अपने पुरखों के इतिहास से सीखा है और फ़ासीवादी प्रचार तन्त्र को सशक्त बनाया है। इनके नेता भव्य मंच, लच्छेदार भाषण के ज़रिये अपने झूठ के गुब्बारे को बड़ा करते हैं। फ़ासीवादियों का यह प्रचार रूप किसी भी अन्य चुनावबाज़ पार्टी के प्रचार से अलग होता है।

फ़ासीवादी प्रचार नकली शत्रु खड़ा करने, उसे बेहद बढ़ा-चढ़ाकर ख़तरे के रूप में पेश करने, फ्यूहरर कल्ट (तानाशाह की महाछवि) बनाने और धार्मिक, नस्ली या किसी अन्य अस्मितागत बहुसंख्या के एकमात्र प्रवक्ता के रूप में ख़ुद को पेश करने का काम करता है। इस प्रचार का सार झूठ है इसलिए ही यह इसे भव्यता और एक किस्म का सामूहिक सम्मोहन या यूँ कहे कि इन्द्रजाल रचने की ज़रूरत होती है। नाज़ी जर्मनी में हिटलर के प्रचार को रेडियो के माध्यम से, उसके भाषण को जगह-जगह भोंपू लगाकर प्रचारित किया जाता था। उसकी रैलियाँ भव्य होती थी और भाषण भी विशालकाय मंच के ज़रिये ही दिये जाते थे। फिल्मों के ज़रिये भी नाज़ियों ने हिटलर की "महानता" को स्थापित करने का काम किया।

ठीक यही सब आज हम अपने देश में भी होते हुए देख रहे हैं। मोदी के मन की बात, सेल्फ़ी पॉइंट, विशाल मंच, भव्य रोड शो से लेकर कला के तमाम माध्यमों का इस्तेमाल पहले से कहीं अधिक अकल्पनीय स्तर पर फ़ासीवादी प्रचार में किया जा रहा है। हिटलर के समय में जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक वॉल्टर बेंजामिन के शब्दों में कहें तो फ़ासिस्ट राजनीति का सौंदर्यीकरण करते हैं। फ़ासीवादी अपने प्रचार को भव्य और दिव्य बनाकर पेश करते हैं जिससे कि उसकी चकाचौंध में सच कहीं छुप जाए। उसी दौर के प्रसिद्ध कवि और नाटककार बेर्टोल्ट ब्रेष्ट फ़ासीवादी राजनीति के सौन्दर्यीकरण पर लिखते हैं :

"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि फासीवादियों के व्यवहार में अत्यन्त नाटकीयता होती है। उन्हें नाटकीयता से विशेष लगाव होता है। वे खुद को 'रेजी' (निर्देशन, मंच प्रबन्धन) बोलते हैं, और उन्होंने सीधे तौर पर नाटक की प्रभावी विधा की एक पूरी श्रृँखला अपनाई है जैसे कि रोशनी और संगीत, कोरस और अप्रत्याशित मोड़। एक अभिनेता ने मुझे कई साल पहले बताया था कि हिटलर ने म्यूनिख के कोर्ट थिएटर में एक्टर फ्रिट्ज़ बेसिल से न केवल वक्तृत्व कला की, बल्कि 'कम्पोर्टमेण्ट' की भी शिक्षा ली थी। मसलन उसने सीखा कि मंच पर कैसे एक नायक की तरह चलते हैं, जिसके लिए आपको अपने घुटने सीधे रखते हुए पूरे पाँव को ज़मीन पर रखना होता है ताकि आप महान दिखें। और उसने अपनी बाहों को क्रॉस करने का सबसे प्रभावशाली तरीका सीखा और ये भी सीखा कि कैसे सहज दिखना होता है।

"आइए हम निडर होकर (या डरकर भी) अध्ययन करें कि हमारे विचार-विमर्श का विषय सहानुभूति के कलात्मक साधनों का उपयोग कैसे करता है! आइए देखें कि वह कौन से कलात्मक विधियों का उपयोग करता है! उदाहरण के लिए, सोचें कि वह लोगों के बीच कैसे बोलता है! भाषणों के दौरान, जो राज्य की नीतियों को समझाने या प्रचार करने के लिए होते हैं, वह ख़ुद को उन निजी भावनाओं के अधीन करता है जिससे जनता को सहजता से प्रभावित किया जा सके। अपने आप में, राजनेताओं के भाषण आवेगवश, स्वतःस्फूर्त निकले शब्द नहीं होते, बल्कि उनके भाषणों का हर तरह से संशोधन किया जाता है और एक विशेष मौके के लिए तैयार किया जाता है। जब वह माइक्रोफोन की ओर बढ़ता है, तो वक्ता न तो साहसी, न क्रोधित, न विजयी, न ही कुछ और महसूस करता है। इसलिए सामान्यतः वक्ता अपने भाषण को गम्भीर स्वर में पढ़ने, अपने तर्कों को एक निश्चित तात्कालिकता देने आदि से सन्तुष्ट होता है। हाउस पेण्टर (ब्रेष्ट हिटलर को हाउस पेण्टर के नाम से सम्बोधित करते हैं) और उसके जैसे लोग काफ़ी अलग तरीके से काम करते हैं। सबसे पहले, सभी प्रकार की चालों से, दर्शकों को उत्तेजित किया जाता है और उकसाया जाता है। ऐसी अफ़वाह फैली होती है कि किसी को कुछ पता नहीं कि वह क्या बोलेगा। क्योंकि वह लोगों के नाम पर नहीं बोलता है, और वह केवल वही नहीं कहता है जो लोगों को कहना है। वह एक ऐसा व्यक्ति है, जो नाटक में एक नायक है, और उसका उद्देश्य लोगों (या कहें दर्शकों) को वह कहलवाना है जो वह कहता है। या बेहतर कहें कि वो महसूस कराना जो वह महसूस करता है। वह व्यक्तियों, विदेश मन्त्रियों या राजनेताओं से लड़ता है। उनके आचरण से ऐसा लगता है कि वह इन लोगों के साथ किसी निजी विवाद में उलझा हुआ है। वह अपने को किसी होमरीय नायक की तरह उग्र आक्षेपों में खो देता है, अपनी बेगुनाही पर ज़ोर देता है, मानो कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को अपना गला घोटने से बस रोक ही रहा हो, उसे सीधे सम्बोधित करता है, उसे चुनौतियाँ देता है, उसका उपहास करता है, इत्यादि। इन सब में, उसके श्रोता भावनात्मक रूप से उनका अनुसरण करते हैं, वे वक्ता की जीत में भाग लेते हैं और उसके दृष्टिकोण को अपनाते हैं। बेशक हाउस पेण्टर (जैसा कि कुछ लोग उसे कहते हैं, क्योंकि वह विध्वंस के लिए तैयार इमारत की दरारों पर केवल सफेदी ही पोत सकता है) ने एक नाटकीय तरीका अपनाया है, जिसके द्वारा वह अपने दर्शकों को लगभग आँख बन्द करके उसका अनुसरण करने के लिए राजी कर सकता है। वह हर किसी को अपने दृष्टिकोण को त्यागने और उसके दृष्टिकोण को अपनाने के लिए प्रेरित करता है, जिससे कि लोग अपने हितों को भूल जाते है और नायक के हितों को अपना हित मान उसे बढ़ावा देते हैं। वह अपने दर्शकों को अपने आन्दोलनों में शामिल करता है, उन्हें अपनी परेशानियों और अपनी जीत में 'भागीदारी' लेने देता है, और उन्हें किसी भी आलोचना से रोकता है, यहाँ तक कि अपनी परिस्थिति पर अपने नज़रिए से एक क्षणिक नज़र डालने से भी रोकता है।"

ब्रेष्ट का यह कथन हूबहू हम आज के फ़ासीवादी दौर में भी लागू होते हुए देख सकते हैं। मोदी के भाषण पर ब्रेष्ट का विवरण बिल्कुल सटीकता से फिट होते हैं। मोदी का नोटबन्दी करके रोना, काँग्रेस द्वारा मरवा देने की बात कहना आदि कई उदाहरण ब्रेष्ट के फ़ासीवादी नेता के खाके में फिट बैठता है। पिछले कुछ सालों में किया गया मोदी के कल्ट का निर्माण भी इसका एक बेहतरीन उदाहरण है। प्रधानमन्त्री का अलग-अलग तरीके से प्रभा मण्डल गढ़ने का काम इसलिए किया गया ताकि यह दिखाया जा सके कि वह पुरुष नहीं बल्कि " महापुरुष " है, "इन्सान के रूप में ईश्वर है" जो देश को एक नये कालखण्ड में प्रवेश कराने के लिए आये हैं, इत्यादि!! मोदी के कल्ट निर्माण के उदाहरण के ज़रिये उपरोक्त चर्चा की रौशनी में देखें तो यह स्पष्ट है कि भाजपा-आरएसएस की मशीनरी नाज़ियों के तौर-तरीकों को ही लागू कर रही है।

भाजपा के विधायकों-सांसदों द्वारा लगातार मोदी को भगवान के अवतार के रुप में पेश किया जाता रहा है। 22 जनवरी के राम मन्दिर उद्घाटन प्रचार के लिए देशभर में मोदी को इस तौर पर प्रचारित किया गया कि वो " बालक राम " को मन्दिर में लाने वाले अवतार हैं। इस अवतार रूप को स्थापित करने का काम मोदी के प्रधानमन्त्री बनने के साथ ही शुरू कर दिया गया था।

भाजपा के राष्ट्रीय कार्यकारी के एक प्रस्ताव में कहा गया था कि भगवान शिव की तरह, मोदी ने सभी विपक्षी हमलों को सहन करते हुए भारत और दुनिया के सर्वोच्च और सबसे लोकप्रिय नेता बन गये हैं। भाजपा प्रवक्ता अवधूत वाघ ने कहा कि हमारे पीएम विष्णु के 11वें अवतार हैं और संस्कृत श्लोक 'यदा यदा हि धर्मस्य' उद्धृत करते हुए बताया कि जब भी धर्म का पतन होता है, भगवान दुनिया को उठाने के लिए एक अवतार के रूप में प्रकट होते हैं और आज मोदी जी के अवतार रुप में वो हमारे सामने हैं। शिवराज सिंह चौहान के कथन के अनुसार पीएम मोदी में "भगवान के अंश" हैं और वह "अलौकिक" हैं। जब यह सब चल ही रहा थी कि इसी बीच मोदी जी ने ख़ुद ही इस ईश्वरीय अवतार की भूमिका को स्वीकारा और कहा कि वह " इस धरती पर महिलाओं को सशक्त करने के लिए अवतरित हुए हैं। " (ख़ैर, देश की जनता के लिए यह मज़ाक अप्रत्याशित नहीं था क्योंकि भाजपा के नेता-मन्त्रियों के स्त्री सशक्तिकरण की सच्चाई से भक्तों के अलावा बाक़ी सभी वाकिफ़ हैं!)

अब मोदी जी ईश्वरीय अवतार साबित हो ही चुके हैं तो उनके पूजन के लिए मन्दिरों का निर्माण भी भक्तों ने देशभर में शुरू कर दिया है। उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी में एक मन्दिर है जहाँ कथित तौर पर शिव के साथ मोदी की पूजा की जाती है। एक महत्वाकाँक्षी भाजपा नेता ने पुणे में एक मोदी मन्दिर बनवाया और उसके साथ मोदी को समर्पित एक कविता को भी प्रदर्शित किया। कथित तौर पर उत्तर प्रदेश के मेरठ में भी पाँच एकड़ ज़मीन पर 10 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से 100 फुट की मोदी मूर्ति वाला एक मन्दिर बनाया जा रहा है। नरेन्द्र मोदी ने जिस स्कूल में अपनी प्रारम्भिक पढ़ाई की है उसे एक पवित्र 'प्रेरणा स्थल' बनाया गया है जहाँ छात्रों को विभिन्न राज्यों से अध्ययन दौरों पर लाया जा रहा है। मोदी कॉलेज और मोदी प्रदर्शनियों के ज़रिये उसकी "महानता" को स्थापित करने के काम में पैसे पानी की तरह बहाये जा रहे हैं। प्रधानमन्त्री के रेडियो शो मन की बात के 100वें एपिसोड को हर स्कूल, कॉलेज, सरकारी से लेकर प्राइवेट दफ़्तरों में सुनने को बाध्यकारी बनाया गया और न सुनने वालों पर जुर्माना लगाया गया। जन औषधि दुकानों से लेकर राशन की दुकानों पर स्कूल-कॉलेजों में भी मोदी को एक ब्रैण्ड, एक कल्ट के रूप में लोगों के दिमाग में बिठाया जा रहा है। एक ऐसा चरित्र जो लोगों के सवालों, उनकी आलोचनाओं से परे हो। इसका ही नतीजा है की आज मोदी का विरोध करने वाले लोगों को देश का विरोध करने वालों में गिना जा रहा है और उनपर देश-विरोधी होने का मुकदमा दर्ज किया जा रहा है। मोदी का कल्ट निर्माण हिटलर सरीखा ही निर्मित किया गया है और दोनों की भावभंगिमा नाटकीयता से परिपूर्ण है।

मोदी के कल्ट निर्माण के ज़रिये तथा अन्य प्रचार के जरिये (चाहे वो मीडिया का हो, फिल्मों के माध्यम से हो, भाषणों व अन्य सांस्कृतिक माध्यमों के इस्तेमाल से हो) फ़ासीवादी ताक़तें अपने राजनीतिक विरोध को लोगों के बीच अकल्पनीय और अविश्वसनीय बनाती हैं और इसी के जरिये ये टुटपुँजिया वर्गों के रूमानी उभार को खड़ा करती हैं। भाजपा-आरएसएस द्वारा अतीत के गौरव से लेकर "हिन्दू राष्ट्र" की महानता का मायाजाल गढ़ने का काम इसी का उदाहरण है। पिछले दस सालों में हमें ऐसे कई प्रचार के नमूने मिल जाएँगे जो यह दिखाने के लिए पर्याप्त है। फ़ासीवादी उभार टुटपुँजिया वर्ग और औपचारिक क्षेत्र के और लम्पट मज़दूर वर्ग के एक हिस्से का ब्रेन वॉश करके नहीं होता बल्कि इस आबादी के बीच असुरक्षा व अनिश्चितता के कारण पैदा होने वाली प्रतिक्रिया की सम्भावना को वास्तविकता में तब्दील करके होता है। पूँजीवादी व्यवस्था जनित सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा और इसके अलावा पूँजीवादी-पितृसत्तात्मक मूल्य-मान्यताएँ इसका सन्दर्भ होती हैं। ठीक इसी वजह से इस आबादी के एक हिस्से के बीच साम्प्रदायिकता और राष्ट्रवाद की रहस्यवादी अपीलें अपनी जड़ें जमाने में कामयाब होती हैं और ये फ़ासीवादियों द्वारा तैयार भीड़ के अगली कतार में होते हैं।

हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि फ़ासीवाद टुटपुँजिया वर्ग का एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन होता है। नवउदारवाद के दौर में फ़ासीवाद मन्दी के दौर में पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की औसत दर को स्वस्थ स्तर पर बनाये रखने के लिए शोषण का बोझ औसत मज़दूरी को तरह-तरह से घटाकर आम मेहनतकश जनता पर बढ़ाता जाता है। इस शोषण के बोझ के ख़िलाफ़ आम मेहनतकश जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन को या उसके उभार की सम्भावना को कुचलने के लिए ही फ़ासीवाद टुटपुँजिया वर्ग के प्रतिक्रियावादी आन्दोलन को खड़ा करता है। आर्थिक संकट के बोझ में तबाह-बर्बाद हो रहे इस वर्ग के असन्तोष का एक नकली समाधान फ़ासीवाद नकली शत्रु पेश कर के देता है। जैसे इस वक़्त भारत में मुसलमान आबादी इस नकली शत्रु के रूप में मौजूद है और जर्मनी में यह यहूदी आबादी के रूप में मौजूद थी।

राजनीति के सौन्दर्यीकरण का इस्तेमाल फ़ासिस्ट ताक़तें पहले भी करती रहीं हैं और आज भी हमारे देश की फ़ासीवादी हुकूमत इसका ही इस्तेमाल कर मिथकों को सच के तौर पर जनमानस में स्थापित कर रही है।

फासिस्टों द्वारा किये जा रहे "राजनीति के सौन्दर्यीकरण" के जवाब में सर्वहारा वर्ग कला और सौन्दर्य का भी राजनीतिकरण करता हैं। सर्वहारा कला-संस्कृति लोगों के जीवन के प्रश्नों को सामने रखती है, वह सच पर आधारित होती है और इसलिए ही उसे किसी नकली भव्यता और खोखली नाटकीयता की ज़रूरत नहीं होती है। वह राजनीति के फासिस्ट सौन्दर्यीकरण का जवाब सौन्दर्य के राजनीतिकरण के ज़रिये देती है। यानी, वह वर्गीय दृष्टि से हर चीज़ पर सवाल खड़ा करती है और सही सवाल पूछती है: यानी, कौन-सी चीज़ किसके वर्ग हित में जाती है, किसकी सेवा करती है। फ़ासीवादियों का राष्ट्रवाद किसी राष्ट्र की बात करता है; उनके "हिन्दू राष्ट्र" में मज़दूरों-मेहनतकशों, दलितों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों की क्या जगह होगी, आदि। यही फासिस्ट सौन्दर्यीकरण का सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिकरण के द्वारा दिया जाने वाला जवाब है।

गाज़ा वह फ़ीनिक्स पक्षी है जो अपनी राख से फिर उठ खड़ा होगा!

● लता

गाज़ा और वेस्ट बैंक की बहादुर जनता सेटलर, उपनिवेशवादी, ज़ायनवादी इज़रायल के ख़िलाफ़ अपने अधिकार, आत्मसम्मान, भविष्य और अस्तित्व की लड़ाई पूरी बहादुरी के साथ लड़ रही है। यह लेख लिखने तक युद्ध के 121 दिन से अधिक बीत चुके थे। भयंकर बमबारी, टैंक और आधुनिक हथियारों के साथ ज़मीनी हमलों के बावजूद फ़िलिस्तीन की जनता अकूत बलिदानियाँ दे कर लड़ रही है। फ़िलिस्तीनी जनता की चीमड़ता और संघर्ष के जज़्बे को देखते हुए हत्यारे नेतन्याहू का गुस्सा मासूम बच्चों, औरतों, बुज़ुर्गों और यहाँ तक कि फिलिस्तीनी जनता के जीविकोपार्जन में काम आने वाले जानवरों और मवेशियों पर निकल रहा है। पूर्ण विजय और हमास को जड़-मूल से समाप्त करने के लक्ष्य का दावा करने वाले हत्यारे नेतन्याहू के लिए युद्ध जारी रखना हर दिन कठिन होता जा रहा है। वह मासूम बच्चों की मौत, स्कूल, अस्पतालों और रिहायशी मकानों की तबाही को जीत की तरह इज़रायली जनता के सामने प्रस्तुत कर रहा है लेकिन आज भी बन्धकों को छुड़ा नहीं सका है। उल्टे गाज़ा फिलिस्तीनी मुक्ति योद्धाओं द्वारा इज़रायली ज़ायनवादी सेना की कब्रगाह में तब्दील हो रहा है। गाज़ा में अपनी हार को देखते हुए हमास को जड़मूल से नष्ट करने के घोषित लक्ष्य को उसने चुपके से बदल दिया है। **अब नेतन्याहू और उसके मन्त्री-जनरल कहने लगे हैं कि हमास को हम इतना कमज़ोर कर देंगे कि वह दुबारा ऐसी कार्रवाई नहीं कर सकेगा।**

7 अक्टूबर को गाज़ा के लड़ाकुओं ने अपमान भरी क़ैद के ख़िलाफ़ इज़रायल की ज़मीन, आसमान व समुद्र की घेरेबन्दी तोड़ कर आज़ादी का परचम तो लहराया ही, लेकिन साथ ही इज़रायल के '**आयरन डोम**' व तमाम अन्य आधुनिक सुरक्षा उपकरणों के मिथक को भी एक बार फिर खण्डित किया। विश्व में सुरक्षा तकनीक और आधुनिक हथियारों का व्यापार करने वाला इज़रायल इस हार के बाद किस तरह सुरक्षा तकनीक और आधुनिक हथियारों की गुणवत्ता का दावा करेगा? इज़रायल की सैन्य शक्ति और ख़ुफ़िया तन्त्र का मिथक गाज़ा की जनता तोड़ती रहती है लेकिन 2006 में हिज़्बुल्ला से हुई हार इज़रायल के लिए घोर अपमानजनक साबित हुई थी और अब हमास के हाथों हार का सामना उसके लिए सबसे बड़ी ज़िल्लत की वजह बन रहा है। यह सच है कि फिलिस्तीनी जनता इसके लिए भारी कीमत चुका रही है। लेकिन साम्राज्यवादी जब भी हारते हैं, तो इसी तरह बूढ़ों, बच्चों, औरतों का क़त्लेआम करते हैं। यह सिर्फ़ उनकी हताशा को दिखलाता है। और यह भी ग़ौरतलब है कि हर ऐसे हत्याकाण्ड के साथ दुनिया में साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ आम मेहनतकश जनता में नफ़रत बढ़ती जाती है। इज़रायल और अमेरिका, ब्रिटेन और अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देश आज दुनिया में सबसे घृणा और नफ़रत का पात्र बन चुके देश हैं।

गाज़ा और वेस्ट बैंक की वर्तमान स्थिति

गाज़ा की जनता ज़ायनवादी फ़ासिस्ट सेटलर इज़रायल की क़ैद से मुक्त होना चाहती है और इस लड़ाई को जीतने के लिए वह कमर कसे हुए है। अकूत बलिदानियों और विनाश झेलने के बाद भी हर बार गाज़ा फिर से फ़ीनिक्स पक्षी की तरह अपनी ही राख से जीवित हो उठता है। फ़िलिस्तीनी जनता विनाश और क़ुर्बानियों के बीच जीवन गढ़ती है, नये घर बनाती है, नये गीत रचती है, अपने खुशी के मौकों पर नाचती-झूमती है, उत्पादन करती है और समुद्र की लहरों पर सवार हो मुक्ति के सपने देखती है। किसी भी देश की जनता हमेशा के लिए ग़ुलाम नहीं बनायी जा सकती। जनता लड़ती है, लड़ाकुओं को पैदा करती है और मुक्ति के सपने अगली पीढ़ी को सौंप देती है। फ़िलिस्तीन इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

7 अक्टूबर के बाद 23 लाख की आबादी वाली गाज़ा पट्टी में 85 प्रतिशत आबादी विस्थापित हो गई है। यानी इज़रायल ने बमबारी और ज़मीनी हमलों के दौरान उत्तर गाज़ा की आबादी को धकेल-धकेल कर दक्षिण गाज़ा की ओर विस्थापित होने को मज़बूर कर दिया है। ठण्ड और बारिश में यह 85 प्रतिशत आबादी जिसमें बड़ी संख्या बच्चों और औरतों की है सड़कों पर सो रही है। यह आबादी एक समय खाना खा रही है और कभी-कभी वह भी नहीं मिलता। गाज़ा में छोटे-छोटे बच्चे बमबारी, ज़मीनी हमलों के अलावा भयंकर भुखमरी, बीमारी और साफ़-सफ़ाई की कमी का सामना कर रहे हैं। गाज़ा में पीने के पानी की समस्या है, अधिकतर सड़कें और यातायात बमबारी से तबाह हो गये हैं। इज़रायल जानबूझ कर अस्पतालों पर हमले कर रहा है और दवा, चिकित्सा उपकरण, भोजन, पानी, टेण्ट जैसे किसी भी मानवीय मदद को गाज़ा तक नहीं पहुँचने दे रहा है। आँकड़ों के अनुसार हर घण्टे गाज़ा में 15 लोग मारे जा रहे हैं जिनमें 6 बच्चे हैं।अभी तक गाज़ा में 27,365 लोग मारे जा चुके हैं जिनमें 11,500 बच्चे है और 8000 औरतें। घायलों की संख्या 66,630 है जिसमें 8,663 बच्चे हैं और 6,327 औरतें हैं। 8000 से अधिक लोग लापता हैं। वेस्ट बैंक में 382 लोग मारे जा चुके हैं जिनमें 100 बच्चे हैं। यहाँ घायलों की संख्या 4,250 है। अब तक इज़रायल ने 94 पत्रकारों की हत्या की है जिनमें से अधिकतर फ़िलिस्तीनी थे।

नेतन्याहू, इज़रायली जनता और युद्ध

7 अक्टूबर को इज़रायल के '**आयरन डोम**' और तमाम ख़ुफ़िया तन्त्रों को भेद कर जब हमास के नेतृत्व में फ़िलिस्तीनी मुक्तियोद्धा इज़रायल पहुँचे तो इज़राइल की पूरी व्यवस्था हिल गई। गाज़ा की ओर से ऐसे किसी हमले की कल्पना इज़रायल ने नहीं की थी। गाज़ा को 2007 से इतनी सख़्त घेरेबन्दी में रखने के बाद ऐसा हमला नींद उड़ा देने वाला था। इज़रायल की सेटलर उपनिवेशवादी ज़ायनवादी आबादी का एक हिस्सा जो 'आयरन डोम' और तमाम ख़ुफ़िया तन्त्रों की मौजूदगी में निश्चिन्त सोता था उसकी रातों की नींद उड़ गई। उसके मन में सुरक्षा के सवाल उठ खड़े हुए हैं। बिरले ही किसी मीडिया हाउस ने हमले के बाद इज़रायल छोड़ कर जाने वाले इज़रायलियों की हवाई अड्डे पर भीड़ दिखाई। इज़रायल की एक बड़ी आबादी जिसके पास अभी तक दो देशों में मान्य पासपोर्ट हैं वह हमले के बाद देश छोड़ कर जाना चाह रही थी। तमाम ज़ायनवादी प्रचार के बावजूद इज़रायल की जनता अन्दर से जानती है कि वह एक देश की जनता का हक़ मार कर उनकी जगह-ज़मीन हथिया रही है और ज़बरदस्ती अपने सेटलमेण्ट बना रही है। इस हमले में 1,139 इज़रायलियों की मौत हुई थी। हर दिन हो रहे ज़मीनी युद्ध में इज़रायली सैनिक भी मर रहे हैं और घायल हो रहे हैं लेकिन इज़रायल से कोई आँकड़े नहीं आ रहे। आधिकारिक तौर पर, मरने वाले इज़रायली सैनिकों की संख्या 250 से ऊपर जा रही है, लेकिन वास्तविक आँकड़े बताते हैं कि ये संख्या 1200 से ऊपर हो सकती है। इसके अलावा युद्ध की वजह से इज़रायल की एक बड़ी आबादी भी विस्थापित हुई है चाहे गाज़ा के निकटवर्ती इलाक़े हो या लेबनान हो। इज़रायली आबादी भी विस्थापित हुई है और नेतन्याहू सरकार पर विस्थापितों को सुविधाएँ नहीं देने के भी आरोप हैं। इज़रायली जनता का एक हिस्सा ऐसा भी है जो शान्ति चाहता है और एक काफ़ी छोटा हिस्सा है जो एक सेक्युलर राज्य चाहता है जिसमें मुसलमान, यहूदी व ईसाई सभी चैन से रह सकें। लेकिन यह भी सच है कि अधिकतर आबादी घोर ज़ायनवादी प्रचार के प्रभाव में है।

यदि इज़रायली जनता के बीच युद्ध समाप्त करने की माँग उठ भी रही है तो इसके पीछे कई वजहें हैं। उनके बीच के एक हिस्से का मानना है कि जब तक युद्ध जारी रहेगा बन्धकों को रिहा नहीं किया जा सकता है। जनता नेतन्याहू पर युद्ध के कुप्रबन्धन का आरोप भी लगा रही है। लेकिन कट्टर ज़ायनवादी आबादी नेतन्याहू से नाराज़ है कि वह गाज़ा पर विजय और हमास के जड़-मूल से नष्ट करने के वायदे से पलट रहा है।

नेतन्याहू सरकार हर दिन हमास के शीर्ष नेताओं को मार गिराने और हमास को कमज़ोर करने के दावे कर रही है लेकिन 4 फ़रवरी को ही गाज़ा के ख़ान यूनुस में हमास और इज़रायली सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ है। हार की झुँझलाहट से हत्यारे नेतन्याहू की आक्रमकता बढ़ रही है जो पूरे मध्य-पूर्व को किसी बड़े युद्ध में घसीट सकती है। अमेरिका इसमें बिल्कुल नहीं पड़ना चाहता, लेकिन मध्यपूर्व में इज़रायली लठैत की मौजूदगी उसके लिए ज़रूरी भी है। इसी द्वन्द्व में अभी अमेरिका इज़रायल को तमाम झिड़कियाँ देते हुए भी समर्थन जारी रखे है क्योंकि उसके पास कोई विकल्प नहीं है। दूसरी ओर, नेतन्याहू को पता है कि जब तक यह युद्ध जारी है, तब तक उसकी सत्ता क़ायम है।

हमले के पहले से ही नेतन्याहू सरकार इज़रायली जनता के प्रतिरोध का सामना कर रही थी। इज़रायल के शासक वर्ग में भी फूट दिख रही है। नेतन्याहू पर ग़बन, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी का आरोप था। नेतन्याहू पर अपनी जान बचाने के लिए न्याय व्यवस्था में संशोधन के भी आरोप हैं। 7 अक्टूबर का हमला उसकी झोली में वरदान की तरह साबित हुआ।

फ़िलहाल भ्रष्ट नेतन्याहू सरकार युद्ध बजट के नाम पर कल्याणकारी बजट में बड़ी कटौती की घोषणा कर रही है जिसकी वजह से इनके बीच की फूट और उभर कर सामने आ रही है। वैसे इज़रायल को ज़िन्दा रखने में अमेरिका और यूरोपीय साम्राज्यवादी देश मोटी रक़म की मदद देते हैं। अभी 3 फ़रवरी को ही अमेरिका ने घोषणा की है को वह अगले सप्ताह इज़रायल के लिए 1760 करोड़ डॉलर की मदद राशि संसद से पारित करने जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार यदि युद्ध फरवरी तक चलता है तो कुल खर्च 1400 करोड़ डॉलर का आएगा। वजह यह है कि अमेरिका-नीत साम्राज्यवादी धुरी के लिए मध्य-पूर्व में इज़रायली गुण्डे की मौजूदगी ज़रूरी है। ऊपर से यह गुण्डा इतना डरपोक और कमज़ोर है कि अपने आकाओं के खुले और पूरे समर्थन के बिना इसके मुँह से कूँ भी नहीं निकल सकती।

समझौते का प्रयास

इज़रायल एक तरफ़ विजय हासिल करने के दावे कर रहा है वहीं दूसरी ओर युद्ध-विराम के प्रयासों का भी हिस्सा बन रहा है। 28 जनवरी को अमेरिका, मिस्र, क़तर, और इज़रायल के आला अधिकारी पेरिस में फ़िलिस्तीन में युद्ध-विराम पर चर्चा करने के लिए मिले। इज़रायल के अधिकारियों का कहना था कि वार्ता "सकारात्मक" रही है। बन्धकों को रिहा करने के बदले इज़रायल ने 2 महीने के युद्ध-विराम की बात कही है। वहीं हमास प्रमुख इस्माइल हानिये 3 फ़रवरी को दोहा में तुर्की अधिकारियों से युद्ध विराम पर चर्चा के लिए मिले। हनिये ने बताया कि पेरिस में जिस प्रस्ताव पर चर्चा हुई वह प्रस्ताव उन्हें भी मिला है। साथ ही बात चीत के लिए उन्हें क़ाहिरा में आमन्त्रित भी किया गया है। यह भी दिखाता है कि नेतन्याहू के लिए युद्ध को जारी रखना मुश्किल है। फ़िलिस्तीनी मुक्तियुद्ध ज़मीनी हमले में इज़रायल को बुरी तरह परास्त कर रहे हैं। यह तो हार की खुले तौर पर स्वीकारोक्ति है। हमास ने स्पष्ट कर दिया है जब तक सारे फ़िलिस्तीनी क़ैदी रिहा नहीं होते और इज़रायल स्थाई युद्ध विराम की घोषणा नहीं करता युद्ध विराम की वार्ता और समझौता मान्य नहीं है।

हमास, हिज़बुल्ला और हूती

2023-24 गाज़ा युद्ध ने अरब जनता की एकजुटता को गहराई से मज़बूत करने का काम किया है और वह अपने-अपने शासक वर्गों की ग़द्दारी के ख़िलाफ़ जम कर सड़कों पर उतार रही है। अपनी जनता के दवाब में आकर शासक वर्ग कुछ ज़ुबानी जमाखर्च कर रहे हैं लेकिन सऊदी अरब से लेकर जॉर्डन, बहरेन तक अरब लीग के शासक वर्गों का चरित्र उनकी जनता के सामने पूरी तरह से उद्घाटित हो गया है। कुछ ने प्रतीकात्मक तौर पर अपने राजदूत बुला लिये हैं। लेकिन इज़रायल के साथ उनके सभी कूटनीतिक-व्यापारिक रिश्ते चल रहे हैं। फ़िलिस्तीन की जनता के साथ यह विश्वासघात नया नहीं है। यह 1980 के दशक से चला आ रहा है जब अभी पीएलओ समझौतापरस्ती की राह पर नहीं निकली थी बल्कि जुझारू तरीक़े से लड़ रही थी तब ही इन देशों ने फ़िलिस्तीन के मुक्ति संघर्ष को समर्थन अपनी शर्तों पर देना शुरू कर दिया था। एक तरफ़ अरब देशों का विश्वासघात और फिर पीएलओ की समझौतापरस्ती फ़िलिस्तीन की जनता के सामने कठिन परिस्थितियाँ उपस्थित होने लगी। अल फ़तह के बाद पीएलओ में पीएफएलपी (फ़िलिस्तीन की कम्युनिस्ट पार्टी) का स्थान था। अल फ़तह के समझौतापरस्त होने के बाद पीएफ़एलपी को आगे बढ़ कर नेतृत्व अपने हाथों में ले लेना चाहिए था। लेकिन बहुत-से वस्तुगत और मनोगत कारणों से ऐसा नहीं हो सका। प्रगतिशील-धर्मनिरपेक्ष नेतृत्व की विकल्पहीनता की वजह से हमास,

(पेज 6 पर जारी)

मुनाफ़े की भेंट चढ़ता हसदेव जंगल : मेहनत और कुदरत दोनों को लूट रहा पूँजीवाद

● चन्द्रप्रकाश

पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए पूँजीपति वर्ग द्वारा पर्यावरण की तबाही एक आम नियम हैं। आरे जंगल, बक्सहवा जंगल के बाद मोदी सरकार और मुनाफ़ाखोर गौतम अडानी की गिद्धदृष्टि मध्य भारत के फेफड़ा कहे जाने वाले हसदेव जंगल पर पड़ चुकी है। हसदेव अरण्य उत्तरी छत्तीसगढ़ के तीन जिलों कोरबा, सूरजपुर, और सरगुजा में फैला हुआ है। मध्य भारत के पर्यावरणीय सन्तुलन और मानसून का रुख़ तय करने में इसकी अहम भूमिका है। हसदेव अरण्य का यह इलाका वन्य जीवों और दुर्लभ पेड़-पौधों की प्रजातियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक अनुमान के मुताबिक़ इन जंगलों के नीचे करीब 5 अरब टन कोयले का भण्डार है और इसलिए धन्नासेठों और इनकी सेवा में लगी मोदी सरकार किसी भी क़ीमत पर इस जंगल को तबाह कर कोयला खनन पर तुली है। यहाँ के निवासी और देशभर के पर्यावरणविद इसके पेड़ों की कटाई और यहाँ पर खनन की मुखालफ़त करते रहे है क्योंकि पारिस्थितिक तन्त्र को पूरी तरह चौपट कर देने की कीमत पर सरकारें मुट्ठीभर धनपशुओं के मुनाफ़े की हवस को तृप्त करने में लगी हुयी हैं। छत्तीसगढ़ विधानसभा चुनाव घोषणापत्र में हसदेव जंगल से कोयला खनन की अनुमति को "धोखा" कहने वाली भाजपा सत्तासीन होते ही अपने इतिहास के मुताबिक़ जनता को ठेंगा दिखा कर अडानी को खदानों के लिए हसदेव जंगल और इसपर आश्रित लाखों लोगों तथा हजारों जैव प्रजातियों की तबाही की पटकथा लिख चुकी है।

छत्तीसगढ़ में भाजपा की 'विष्णु देव-नरेन्द्र मोदी' डबल इंजन सरकार ने अडानी के मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए 1.76 लाख हेक्टेयर में फैले हसदेव अरण्य की कटाई की अनुमति दे दी है। 21-23 दिसम्बर, 2023 तक 500 पुलिसकर्मियों की तैनाती में हसदेव के कई आदिवासी गाँवों के नौजवानों को नज़रबन्द कर 30,000 से ज़्यादा पेड़ काट डाले गए और अभी 4 लाख से ज़्यादा पेड़ों की कटाई की जानी है। गौरतलब है कि हसदेव अरण्य का इलाका संविधान की पाँचवीं अनुसूची के तहत आता है। जिसके तहत इन इलाकों में ग्राम सभाओं को पेसा क़ानून के तहत विशेष अधिकार प्राप्त है जिसके मुताबिक जब तक ग्राम सभा सहमति नहीं देगी, तब तक खनन के लिए भूमि अधिग्रहित नहीं की जा सकती है। 20 ग्राम सभाओं ने अडानी द्वारा किये जाने वाले जंगल की कटाई और कोयला खनन के ख़िलाफ़ प्रस्ताव पारित किया था। लेकिन अडानी ने 2018 में फर्जी प्रस्ताव बनाकर पेड़ों की कटाई शुरू कर दी। साल 2018 में छत्तीसगढ़ में कांग्रेस की सरकार बनी। इस फर्जी प्रस्ताव के ख़िलाफ़ आदिवासियों ने 75 दिनों तक धरना किया और 300 किलोमीटर की यात्रा निकालकर वे मुख्यमन्त्री भूपेश बघेल के पास पहुँचे। लेकिन कोई सुनवाई नहीं की गई। साल 2023 में भाजपा की सरकार बनी और सत्ता में आते ही भाजपा ने अडानी को दूसरे चरण के खनन की भी अनुमति दे दी। हसदेव अरण्य के परसा ईस्ट केते ब्लॉक के अन्तर्गत पहले चरण के खनन के दौरान 58 मिलियन टन कोयला घोटाला समाने आया था। दूसरे चरण के खनन की शुरुआत 2028 में होनी थी लेकिन तमाम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए और आदिवासियों के विरोध के बावजूद परसा ईस्ट केते बासन के इलाके में दूसरे चरण के कोयला खनन के लिए 91 हेक्टेयर पर वनों की कटाई शुरू कर दी गई है।

ऐसे में सवाल उठता है कि क्या भारत के पास अन्य जगहों पर कोयला भण्डार नहीं है? क्या हसदेव जंगल के लाखों पेड़ों की कटाई इसलिए की जा रही है कि भारत में कोयला संकट है!? जवाब है - नहीं। ग्लोबल एनर्जी मॉनिटर के अनुसार कोल इण्डिया लिमिटेड के कोयला खदानों से अबतक उपलब्ध कोयले की केवल 1

फ़ीसदी ही खुदाई हुई है। यानी पहले से भारत सरकार के पास इतने कोयले के खदानों का भण्डार है कि अगले 100 साल तक कोयले की कमी नहीं होने वाली है। दूसरी तरफ भारत सरकार ने 2070 तक कोयले का इस्तेमाल बन्द करने का भी दावा किया है। तो ऐसे में सवाल उठता है कि हसदेव जंगल की कटाई कर कोयला क्यों निकाला जा रहा है?

दरअसल यह सारा खेल 2013 में शुरू हुआ, जब राजस्थान की वसुन्धरा राजे सरकार ने राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड और अडानी इण्टरप्राइजेज लिमिटेड के साथ मिलकर एक ज्वाइण्ट वेंचर बनाया था। जिसका 74 फ़ीसदी मालिकाना अडानी के पास था। पहले राजस्थान सरकार बिजली उत्पादन के लिए कोयला सार्वजनिक उपक्रम, कोल इण्डिया लिमिटेड से कोयला ख़रीदती थी लेकिन इस ज्वाइण्ट वेंचर के बनने के बाद राजस्थान सरकार कोयला अडानी की कम्पनी से कई गुना ज़्यादा दाम पर खरीदने लगी। यानी जनता की गाढ़ी कमाई से वसूले गए टैक्स को राजस्थान सरकार अडानी की झोली में डाल रही है। दूसरा कारण यह है कि हसदेव के इलाके में कोयला निकालने के लिए ज़्यादा गहरा नहीं खोदना पड़ता है, इससे अडानी को खुदाई में होने वाले खर्च में काफ़ी बचत होगी और मोटा मुनाफ़ा होगा। अब सहज ही समझा जा सकता है कि यह उत्खनन देश में कोयले की आपूर्ति के लिए नहीं बल्कि अडानी को मुनाफ़ा पहुँचाने के लिए किया जा रहा है। जिसकी क़ीमत वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि के जरिये इलाके की आम मेहनतकश जनता चुका रही है। वहीं दूसरी ओर अन्धाधुन्ध पेड़ों की कटाई के कारण हाथी तथा अन्य जीव-जन्तु मारे जा रहे हैं और कुछ भाग कर आसपास के गाँवों में जा रहे हैं। पहले से ही छत्तीसगढ़ मानव-हाथी संघर्ष से जूझ रहा है। जिन इलाकों में पेड़ काटे गए हैं वहाँ से हाथी भागकर आसपास के गाँवों में जा रहे हैं और आदिवासियों के घरों को तोड़ रहे हैं और खेतों को बर्बाद कर रहे हैं। हसदेव के कुछ इलाकों से जंगलों की कटाई के बाद हसदेव नदी की कुछ शाखाएँ सूख गई हैं जिसका खामियाजा वहाँ के किसान, जो इन नदियों से सिंचाई कर रहे थे, भुगत रहे हैं। भारतीय वन्यजीव संस्थान के एक रिसर्च में पता चला कि अगर हसदेव जंगल के इलाके को काटा गया तो हसदेव नदी और बांगो बाँध के अस्तित्व पर संकट खड़ा हो सकता है। हसदेव नदी के अस्तित्व पर आने वाले संकट से "धान का कटोरा" कहे जाने वाले छत्तीसगढ़ के 3 लाख हेक्टेयर में लगी फसलों की सिंचाई का संकट खड़ा हो जायेगा। इसके अलावा हसदेव के जंगलों में 150 से ज़्यादा ऐसी वनस्पतियाँ हैं जो विलुप्तप्राय हैं और 67 दुर्लभ चिडियों की प्रजातियाँ हैं, इनका अस्तित्व भी ख़तरे में पड़ जायेगा।

छत्तीसगढ़ में हजारों लोग हसदेव जंगल में पेड़ों की कटाई को रोकने के लिए पिछले एक दशक से आन्दोलन कर रहे हैं तथा जल, जंगल और ज़मीन बचाने की लड़ाई लड़ रहें हैं। लोगों को आन्दोलन में जाने से रोकने के लिए लोगों को डराने-धमकाने से लेकर मीडिया चैनलों के माध्यम से झूठ को सच बनाने की पूरी कोशिश की जा रही है। इस लूट और पर्यावरणीय तबाही में भाजपा और कांग्रेस की अडानी के साथ मिलीभगत है। तमाम बुर्जुआ पार्टियाँ आज पूँजीपतियों के मैनेजिंग कमेटी की तरह काम कर रही हैं और पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पहुँचाने के लिए पर्यावरण को तबाह कर रही हैं जिसका खामियाजा आम ग़रीब मेहनतकश वर्ग चुका रहा है। आम तौर पर, पर्यावरण की तबाही को रोकने के लिए ज़रूरी है कि मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका जाए और मेहनतकशों का राज कायम किया जाए। जो क्रान्ति की बात किये बिना पर्यावरण को बचाने के लिए रोना-गाना करते हैं, वे जनता को धोखा देते हैं। बिना यह जाने के पर्यावरण को तबाह कर कौन रहा है, आप पर्यावरण को कैसे बचा सकते हैं?

गाज़ा वह फ़ीनिक्स पक्षी है जो अपनी राख से फिर उठ खड़ा होगा!

(पेज 5 से आगे)

हिज़बुल्ला और हूती जैसे कट्टरपन्थी नेतृत्व मध्य-पूर्व में उभरे। हूती यमन में अमेरिका और सऊदी अरब के पिट्ठू शासक अली अब्दुल्ला सालेह के ख़िलाफ़ लड़ रही थी। 2011 में अरब स्प्रिंग के दौरान सालेह के निरंकुश सत्ता को समाप्त किया लेकिन उसकी जगह उसके ही आदमी अब्दुरबाह मैसूर हादी की सरकार बनी। यह सरकार पहले की तरह ही जनता में अलोकप्रिय रही और 2015 में हूतियों ने उत्तरी यमन पर क़ब्ज़ा कर लिया। उसके बाद अमेरिका की मदद से सऊदी अरब ने यमन पर हमला कर दिया और भयंकर नरसंहार, विस्थापन, भुखमरी को जन्म दिया। यमन में भी जनता निरंकुश शासक के ख़िलाफ़ लड़ी और किसी क्रान्तिकारी विकल्प की अनुपस्थिति में इस्लामिक कट्टरपन्थी ताक़तें नेतृत्व की तरह उभरीं।

पहले साम्राज्यवाद ने इनमें से कई को प्रगतिशील-धर्मनिरपेक्ष नेतृत्व के ख़िलाफ़ खड़ा किया था। हालाँकि आज का हमास और हिज़बुल्ला निश्चित ही 1980-90 के दशक का हमास और हिज़बुल्ला नहीं है जिसे साम्राज्यवादी ताक़तों ने प्रगतिशील-सेक्युलर शक्तिओं के ख़िलाफ़ खड़ा किया था। आज ये ताक़तें अमेरिकी और यूरोपीय साम्राज्यवाद के नियन्त्रण से निकल चुके हैं और जनता के संघर्षों के सन्दर्भ ने एक सीमित अर्थों में इनके चरित्र में भी परिवर्तन लाया है। वहीं इनका जनता में मज़बूत सामाजिक आधार है। जनता अपनी मुक्ति के लिए लड़ना नहीं छोड़ती है और जो उसकी आकाँक्षाओं, दमन के विरुद्ध उसके संघर्ष के साथ खड़ा होता है वह उसे तमाम एतराज़ के साथ भी नेतृत्व के तौर पर अपना लेती है लेकिन साथ ही वह उसे बदलती भी है जैसा कि हमास के सन्दर्भ में हुआ। आज वेस्ट बैंक में भी हमास का प्रभाव बढ़ रहा है और इसके पीछे की वजह भी पीएलओ का वही ऐतिहासिक विश्वासघात है। आज पीएलओ पूरी तरह इज़रायल के इशारों पर नाच रहा है और वेस्ट बैंक की जनता के सामने इसकी सच्चाई पूरी तरह से खुल गई है।

मध्य-पूर्व विस्फोट की कगार पर

फ़िलिस्तीन की मुक्ति का प्रश्न पूरे अरब जगत में एक गाँठ बना हुआ है। उत्तर-पूर्व में पिछले दस दिनों की घटनाएँ इसे एकबार फिर साबित कर रही हैं। लाल सागर में हूती लड़ाकुओं ने इज़रायल पर दबाव बनाने के लिए इज़राइली, अमेरिकी और इज़रायल समर्थक अन्य देशों के जहाज़ों पर हमले जारी रखे है। इसके प्रतिरोध में अमेरिका और ब्रिटेन ने यमन के नागरिकों पर बमबारी शुरू कर दी है। अब यमन पर हो रहे हमले में ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड और बहरेन भी शामिल हो गये हैं। 3 फ़रवरी को अमेरिका ने यह कहते हुए कि वह ईरानी सैन्य आधार पर हमले कर रहा है उसने इराक़ और सीरिया पर हमले किये। ईरान अमेरिका को चेतावनी दे रहा है। वहीं ईरान की धुरी के साथ खड़ी शक्तियों ने सीरिया और इराक़ में लगातार अमेरिकी ठिकानों पर हमले किये हैं। इराक़ में तो अमेरिका को अपने सैन्य ठिकानों को क़ायम रखना भी मुश्किल हो रहा है। ईरान के साथ रुस-चीन धुरी है। इस तरह अमेरिका-ब्रिटेन धुरी या नाटो देशों की धुरी और रुस-चीन धुरी के बढ़ते आपसी तनाव मध्य-पूर्व में भी किसी बड़े टकराव की ओर जा सकते हैं। अन्तरविरोधों की गाँठ में इज़रायली सेटलर उपनिवेशवाद और फिलिस्तीनी मुक्ति का प्रश्न है। यही वहाँ साम्राज्यवाद की जड़ें खोदने और अन्ततः कब्र खोदने का काम करेगा।

राम मन्दिर के बाद काशी के ज़रिये साम्प्रदायिक माहौल बिगाड़ने की कोशिश में लगे संघ-भाजपा

इस उन्माद में मत बहिए! आइए अपने सही इतिहास को जानें!

● भारत

आज इस फ़ासीवादी दौर में इतिहास को भी अन्धराष्ट्रवादी/साम्प्रदायिक तरीके से यह निज़ाम हमारे बीच पेश कर रहा है। इतिहास में हुई घटनाओं को वर्तमान पर थोपा जा रहा है। इसलिए आज ज़रूरी हो जाता है कि हम अपने सही इतिहास से परिचित हों ताकि हम जान सके कि हमारे इतिहास में क्या समृद्ध परम्पराएँ रही हैं, जिनसे हम आज सीख सकते हैं और क्या ऐसी रूढ़ियाँ-कुरीतियाँ रही हैं, जिनसे हमें आज छुटकारा पा लेना चाहिए।

हमें हमेशा से बताया जाता रहा है कि इतिहास महज़ घटनाओं व तारीख़ों का ब्यौरेवार विवरण मात्र है, जो अलग-अलग दौरों में घटित हुआ। हमें बताया जाता है कि इतिहास पीछे छूट चुकी बातें हैं, जिनका वर्तमान से कोई सम्बन्ध नहीं है। इतिहास के बारे के इसी तरह की तमाम धारणाएँ प्रचलित हैं। पर क्या सच में इतिहास हमारे किसी काम का नहीं है? क्या हमारा वर्तमान हमारे इतिहास से प्रभावित नहीं है? क्या इतिहास महज़ राजा-महाराजाओं के जीवन व उनके द्वारा लड़े गये युद्धों का ही विवरण है? इतिहास को सही तरीक़े से जानने की ज़रूरत है ताकि पिछले समाजों का अध्ययन कर हम आज अपने वर्तमान को समझ सकें और उसे बदल सकें। अगर हम इतिहास को बीती हुई बात मान कर छोड़ देंगे तो कभी भविष्य का निर्माण नहीं कर पायेंगे। इस लेख और इस श्रृँखला में आने वाले लेखों में हम में हम जानेंगे संघ द्वारा पेश किये जाने वाले छद्म इतिहास की सच्चाई और साथ ही भारत के इतिहास में भौतिकवादी परम्परा के बारे जो हमारी विरासत है, जो हमें इतिहास की सच्चाई के बारे में बताती है। आइए अब वर्तमान की ओर लौटते हैं और जानते हैं कि इस समय इतिहास को बदलने के नाम पर मोदी सरकार किस प्रकार धर्म की राजनीति कर साम्प्रदायिक उन्माद फैला रही है।

जैसी कि उम्मीद थी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआई) ने वाराणसी में ज्ञानवापी मस्ज़िद की अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में दावा किया है कि मौजूदा संरचना (मस्ज़िद) और मन्दिर के कुछ हिस्सों के निर्माण से पहले वहाँ एक "बड़ा हिन्दू मन्दिर" मौजूद था। इनका उपयोग इस्लामी पूजा स्थल के निर्माण में किया गया था। एएसआई ने काशी विश्वनाथ मन्दिर से सटी 17वीं सदी की मस्ज़िद का अदालत द्वारा अनुमोदित वैज्ञानिक सर्वेक्षण किया ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या इसका निर्माण किसी मन्दिर की पहले से मौजूद संरचना पर किया गया था, जैसा कि याचिकाकर्ताओं ने दावा किया है, जो साल भर से मन्दिर में प्रवेश की माँग कर रहे हैं। उनका कहना है कि ज्ञानवापी मस्ज़िद परिसर में माँ श्रृंगार गौरी का दर्शन एवं पूजन स्थल मौजूद है। ताज़ा ख़बरों के अनुसार अब ज्ञानवापी स्थित तहख़ाने में पूजा करने की इजाज़त दे दी गयी है। वाराणसी अदालत ने 24 जनवरी को एएसआई रिपोर्ट के निष्कर्षों को सभी पक्षों को उपलब्ध कराने की अनुमति दी थी। एएसआई के सर्वे का निष्कर्ष ज़रा भी अप्रत्याशित प्रतीत नहीं होता और इसी बात की सम्भावना अधिक थी कि वह भाजपा और संघ परिवार के मुताबिक ही अपनी रिपोर्ट देगा। साथ ही न्यायलय भी आज अन्य सभी मामलों की ही तरह इन मामलों में भी भाजपा के मन-मुआफ़िक ही निर्णय दे रहा है। यह दीगर बात है कि हमारे देश का संविधान भी यह कहता है कि पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 के प्रावधानों के तहत कोई भी व्यक्ति किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी भी खण्ड के पूजा स्थल को धर्मान्तरित नहीं करेगा। यह घोषणा करता है कि 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान पूजा स्थल का धार्मिक चरित्र ज्यों का त्यों जारी रहेगा। इसके बावजूद अगर न्यायालय द्वारा ज्ञानवापी को हटाकर वहाँ मन्दिर बनाने का निर्णय दिया जाये तो यह भी आश्चर्यचकित करने वाला नहीं होगा। राम मन्दिर का बनना इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण है।

वहीं राम मन्दिर के उद्घाटन के दो दिन बाद ही एएसआई द्वारा इस रिपोर्ट को जारी करना यह भी दर्शाता है कि भाजपा व संघ इसे मुद्दा बनाने के लिए तुले हुए हैं और इसके अलावा उनके पास कोई रास्ता नहीं बचा। दरअसल 22 जनवरी को राम मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा को लेकर भाजपा-आरएसएस जिस तरह का साम्प्रदायिक उन्माद फैलाना चाहते थे, उसमें वे सफ़ल नहीं हो सके। आरएसएस ने पूरी कोशिश की "राम के नाम" पर उन्माद फैलाकर एक बड़ी आबादी को अपने पक्ष में किया जा सके। हर तरफ़ भगवा झण्डे-पताका लगाने से लेकर शोभा यात्राएँ निकाली गयी, पर इसमें आम जनता की भागीदारी बहुत कम थी। इसकी तैयारी में भाजपा-आरएसएस-बजरंग दल और तमाम इनके संगठनों ने अपनी पूरी ताक़त लगा दी और साथ ही सरकारी मशीनरी का भी पूरी तरह प्रयोग किया गया, पर इसके बावजूद जनता की बड़ी आबादी इनके उन्माद में शामिल नहीं हुई। राम मन्दिर के नाम पर धर्म की राजनीति का पर्याप्त असर न होते देख अब इन तमाम संगठनों की नज़रें ज्ञानवापी पर टिकी हैं और हो सकता है इसके बाद मथुरा में भी यही देखने को मिले।

सोचने वाली बात यह है कि आज इस सवाल को इतनी प्राथमिकता क्यों दी जा रही है कि किसी जगह पर पहले मन्दिर था या मस्ज़िद? वैसे तो उत्तर व पश्चिमी भारत के सैंकड़ों मन्दिर हैं जिन्हें बौद्ध व जैन मठ तथा विहार तोड़ कर बनाया गया है और इसके स्पष्ट पुरातात्विक प्रमाण मौजूद हैं। तो क्या उन सारे मन्दिरों को तोड़कर वहाँ बौद्ध व जैन मठ तथा विहार बनाना उचित होगा? सवाल यह है कि आज इस ग़ैर-मुद्दे को जनता के लिए मुद्दा बनाया ही क्यों जा रहा है?

जवाब स्पष्ट है। सभी जानते है कि आने वाले अप्रैल या मई में लोकसभा चुनाव है और आज भाजपा के पास विकास का कोई मुद्दा नहीं बचा है, जिसपर चुनाव में वोट माँगा जा सकें। क्या आपने कभी सोचा है कि भाजपा अब कभी 'अच्छे दिनों' का नाम तक क्यों नहीं लेती? क्या आपने सोचा है कि नरेन्द्र मोदी अब कभी नोटबन्दी का ज़िक्र तक क्यों नहीं करते? वैसे तो भाजपा हर धार्मिक घटना की वर्षगाँठ मनाती है! वह नोटबन्दी को लागू किये जाने की वर्षगाँठ क्यों नहीं मनाती? वह जीएसटी को लागू किये जाने की वर्षगाँठ क्यों नहीं मनाती? अपनी जन कल्याणकारी योजनाओं का प्रचार तो मोदी सरकार तब करेगी जब जनता का पिछले 10 सालों में कोई कल्याण हुआ हो! इन 10 सालों आम मेहनतकश जनता केवल तबाहो-बरबाद हुई है, जिसके बदले में उसे 5 किलो राशन की ख़ैरात देकर और धर्म की अफ़ीम चटाकर चुप कराया जा रहा है।

मन्दिर-मस्ज़िद के मुद्दों को आज इसलिए उछाला जा रहा है क्योंकि महँगाई को क़ाबू करने, बेरोज़गारी पर लगाम कसने, भ्रष्टाचार पर रोक लगाने, मज़दूरों-मेहनतकशों को रोज़गार-सुरक्षा, बेहतर काम और जीवन के हालात, बेहतर मज़दूरी, व अन्य श्रम अधिकार मुहैया कराने में बुरी तरह से नाक़ाम हो चुकी है। मोदी सरकार वही रणनीति अपना रही है, जो जनता की धार्मिक भावनाओं का शोषण कर उसे बेवकूफ़ बनाने के लिए भारतीय जनता पार्टी और उसका आका संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हमेशा से अपनाते रहे हैं। चूँकि मोदी सरकार के पास पिछले 10 वर्षों में जनता के सामने पेश करने को कुछ भी नहीं है, इसलिए वह रामभरोसे व मन्दिर-मस्ज़िद के झगड़ों में उलझा कर तीसरी बार सत्ता में पहुँचने का जुगाड़ करने में लगी हुई है।

ज़रा ठण्डे दिमाग़ से सोचिए क्या आज इससे फ़र्क पड़ता है कि किस जगह पर कब मन्दिर बना था या कब उसे तोड़कर मस्ज़िद बनाया गया! जैसा कि हमने ऊपर बताया, अगर इतिहास में पीछे जाकर देखें और तय करें कि कब कहाँ क्या बना था उसके अनुसार तो आज बहुत से मन्दिरों तक को तोड़ना पड़ सकता है क्योंकि वहाँ कभी जैन या बौद्ध मठ मौजूद थे। कुछ मुसलमान शासकों ने मन्दिरों को तोड़ा, तो मुसलमानों के आने से पहले कुछ हिन्दू शासकों ने बौद्धों और जैनों के मन्दिरों को भी तोड़ा है। अशोक के बाद के शासक पुष्यमित्र ने बौद्धों के रक्त से अपने हाथ रंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमानों के आने से पहले ही हमारे देश में मौजूद हिन्दू शासकों द्वारा मठों और मन्दिरों को लूटना जारी था, ताकि वहाँ से धन इकट्ठा किया जा सके। हिन्दू धर्म के भीतर के विभिन्न सम्प्रदायों ने भी बार-बार एक दूसरे के पूजा-स्थलों को तोड़ा व जलाया है, एक-दूसरे को लूटा और मारा-काटा है, मसलन, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि। तो मध्यकालीन अतीत और प्राचीन अतीत में हुई इन घटनाओं के आधार पर इन हिन्दू सम्प्रदायों को आज आपस में हिसाब-किताब बराबर करना चाहिए? **यही मज़दूर-विरोधी प्रतिक्रियावादी राजनीति की ख़ासियत होती है। उसके पास भविष्य में देखने और देने को कुछ नहीं होता; वह मालिकों व ठेकेदारों के लूट की यथास्थिति को बनाये रखना चाहती है; इसलिए वह अतीत के कल्पित अन्याय का हिसाब करने के नाम पर जनता को धर्म पर लड़ाती है। लेकिन उत्तर प्रदेश का मुख्यमन्त्री योगी एम. ए. युसुफ जैसे अरबपति मुसलमान को यूपी में मॉल बनाने के लिए ज़मीनें देने में कोई दिक्कत नहीं देखता! इसी से साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों का दोगलापन पता चल जाता है। मज़दूर वर्ग सबकुछ पैदा करता है, उसके बावजूद शोषित और दमित है, इसलिए वह अतीत के नहीं भविष्य के हिसाब की बात करता है। वह एक अलग भविष्य की बात करता है। वह एक बेहतर समाज और दुनिया के लिए लड़ता है। वह हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी धर्मों के मेहनतकशों की एकजुटता की बात करता है।**

भाजपा की सारी लड़ाई मन्दिर बनाने के नाम पर हो रही है, मन्दिर बनाने के नाम पर उन्मादी भीड़ क़त्लेआम के लिए उतार दी जाती है। पर इन संघियों ने अपने धर्म के इतिहास को भी ठीक से नहीं पढ़ा और इनके गुरुओं ने हमेशा इतिहास को तोड़ मरोड़ कर पेश किया है। अगर धर्म के इतिहास पर भी नज़र डालें, तो हम पायेंगे कि ऋग्वेद तक में कहीं भी मूर्तिपूजा या मन्दिरों के बारे में एक भी उल्लेख नहीं मिलेगा। साथ ही, हमें हमारे देश की गौरवशाली वैज्ञानिक और भौतिकवादी परम्पराओं के बारे में पता चलेगा, जिन्होंने ब्राह्मणवादी धर्म के सामने ऐसे सवाल खड़े किये, जिनके जवाब ब्राह्मणों के पास नहीं थे और जवाब में उन्होंने ऐसे भौतिकवादियों व वैज्ञानिकों का दमन किया। अब हम इस बात पर नज़र डालते हैं कि हमारे देश में मन्दिर कब से बन रहे हैं!

इसके लिए हम वैदिक काल में चलते हैं। 1 गुणाकर मुले इतिहास, संस्कृति और साम्प्रदायिकता में लिखते हैं: *"वैदिक आर्यों के तमाम देवी दैवत अमूर्त थे। उनके लिए मन्दिर नहीं बनते थे, उनकी पूजा नहीं होती थी। उस समय वैदिक देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ होते थे, जिनमें जीव हिंसा एक आम बात थी। पर आज न यज्ञ होते हैं न वैदिक देवताओं की पूजा। इन्द्र वैदिक आर्यों का सबसे बड़ा देवता था। ऋग्वेद की सबसे अधिक ऋचाएँ इन्द्र की स्तुति में रची गयी है। इन्द्र के बाद वैदिक आर्यों के अग्नि, उषा, पूषण, सविता, सोम आदि प्रमुख देवता थे, पर आज इनकी कहीं कोई पूजा नहीं होती। बताते चले कि ऋग्वेद में रुद्र और विष्णु का भी उल्लेख है, पर गौण रूप में। वैदिक काल में हमारे देश में आर्य लोग मूर्तिपूजक नहीं थे और न उस समय आर्यों के मन्दिर ही थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि उस समय इस देश के मूल निवासियों के अपने देवी-देवता और उनके मन्दिर नहीं रहे होंगे। ऋग्वेद में अनार्यों के "शिश्नदेव" का उल्लेख है। सिन्धु सभ्यता के निवासियों के मन्दिर होने की काफी सम्भावना है, उनमें लिंग-पूजा प्रचलित थी। पर प्राचीन वैदिक आर्यों के मन्दिर नहीं होते थे। उनके सारे धार्मिक अनुष्ठान यज्ञकर्म के इर्द-गिर्द सीमित थे।"*

इसी में वह आगे लिखते हैं: *"अब महाभारत काल में आते हैं। सभी इतिहासकार इसे स्वीकार करते हैं कि महाभारत किसी एक निश्चित काल और एक लेखक की रचना नहीं है। इसकी कुछ कथाएँ वैदिक काल के पहले की भी हो सकती हैं, तो कुछ कथाएँ भारत में इस्लाम के आगमन काल तक जोड़ी जा सकती हैं। महाभारत का काफी अंश गुप्तकाल में लिखा गया, क्योंकि इसमें हूणों का उल्लेख है (आदिपर्व, 174.38 और सभापर्व, 32.12 व 51.24)। आदिपर्व के पहले ही अध्याय (श्लोक 81) में व्यास कहते हैं: "8800 श्लोकों को मैं जानता हूं, शुक जानता है, पर पता नहीं संजय जानता है या नहीं जानता।" बाद में महाभारत एक लाख श्लोकों का बन गया। खैर, यहाँ हमें यह देखना है कि महाभारत में मन्दिरों और मूर्तिपूजा के बारे में क्या जानकारी मिलती*

(पेज 10 पर जारी)

कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न और मण्डल कमीशन की राजनीति

(पेज 1 से आगे)

सत्ता का सुख पाने के लिए भाजपा के साथ गलबहियाँ करने से नहीं हिचके। और यह अनायास नहीं था, बल्कि वर्गीय राजनीति में इसकी वजहें निहित थीं।

वैसे इस प्रकरण ने नीतीश कुमार को भी अपने पलटने को सही ठहराने का एक बहाना दे दिया, कर्पूरी ठाकुर के बहाने अपनी सभाओं में नीतीश कुमार एक तरफ़ तो प्रधानमन्त्री मोदी के तारीफों के पुल बाँधते गए और दूसरी तरफ़ लालू यादव और तेजस्वी यादव पर दबे सुर में कटाक्ष करते रहे।

जातीय जनगणना के उपरान्त भाजपा के भी कान खड़े हो गए थे। जातीय जनगणना के अनुसार बिहार में सिर्फ अत्यन्त पिछड़ी जातियाँ कुल जनसंख्या के 36 प्रतिशत के करीब है। अगर अन्य पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों व जनजातियों को भी शामिल कर लिया जाये, तो यह आँकड़ा 61 फ़ीसदी तक पहुँच जाता है। इस जातीय जनगणना के बाद, देश भर में इसे करने को लेकर भी बात उठने लगी थी। सूबे में भी इस जनगणना के तत्काल बाद सरकारी नौकरियों में पिछड़ी, अत्यन्त पिछड़ी, अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए आरक्षण को 65 प्रतिशत तक करने के लिए बकायदा विधानसभा में बिल भी पास कर दिया गया। लेकिन इन सबके बीच कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न की घोषणा करने से सामाजिक न्याय की बात करने वाली राजद भी थोड़ी असहज हुयी, क्योंकि यह उसके परम्परागत वोटबैंक में सेंधमारी का प्रयास था।

कर्पूरी ठाकुर की राजनीति और जनसंघ

वैसे यह भी पहली बार हुआ जब किसी को भारत रत्न देने के उपरान्त प्रधानमन्त्री मोदी द्वारा लिखा गया कोई लेख अखबारों में छापा गया हो। इस लेख में कर्पूरी ठाकुर के सादे जीवन व उनके व्यक्तित्व का बखान है पर उनकी राजनीति के बारे में ज्यादा कुछ नहीं है। भाजपा के बिहार का नेतृत्व ने भी कर्पूरी ठाकुर के ऊपर राज्यभर में कार्यक्रम आयोजित किये। उनको "अपना नेता" साबित करने की हर सम्भव कोशिश की। जनता को यह सन्देश देने का प्रयास किया गया कि भाजपा व संघ पिछड़ी व अत्यन्त पिछड़ी जातियों के साथ खड़ी है। लेकिन अगर इनके इतिहास को पलट देखा जाये तो फिर इनकी सच्चाई सामने आती है।

लेकिन इसके पहले कर्पूरी ठाकुर की राजनीति को भी समझना जरूरी है। कर्पूरी ठाकुर जेपी व लोहिया ब्राण्ड नामधारी समाजवादी धारा के ही नेता थे। कर्पूरी ठाकुर अपने समकालीन नामधारी समाजवादी नेताओं से अलग इस मायने में थे कि उन्होंने बिहार में अपनी राजनीति के साथ कांशीराम सरीखी अस्मितावादी राजनीति का घाल-मट्ठा बनाया। नक्सलबाड़ी आन्दोलन के समय वंचित तबकों की एक ऐसी आबादी थी जो अपने हक और अधिकारों को लेकर जागृत हुई थी और इस आन्दोलन में शामिल भी हुई थी। लेकिन क्रान्तिकारी वाम के क्रान्ति की मंज़िल, भारतीय समाज के चरित्र की पहचान के सवाल पर पुराने पड़ चुके कठमुल्लावादी चौखटे में क़ैद रहने और साथ ही दुस्साहसवादी विचलन के कारण यह आन्दोलन अपनी व्यापकता के बावजूद आगे नहीं जा सका। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन की असफलता से खाली स्थान का फ़ायदा बिहार में जाति आधारित अस्मितावादी राजनीति को मिला, कर्पूरी ठाकुर का आधार भी इसी आबादी के बीच से पनपा।

आपातकाल के पहले और बाद में भी आर.एस.एस. के चुनावी फ्रण्ट जनसंघ के समर्थन वाली साझा राज्य सरकारों में कर्पूरी ठाकुर मन्त्री रहे। गाँधी की हत्या के बाद तत्कालीन जनसंघ के ज़रिये संघ परिवार को भारतीय राजनीति की मुख्यधारा में लाने का एक श्रेय काफ़ी हद इन नामधारी समाजवादियों को जाता है। पहले राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण फिर उसके बाद कर्पूरी ठाकुर सरीखे नेता जनसंघ के सम्पर्क में बने रहे। हाँ, यह ज़रूर है कि आगे चलकर जनसंघ के साथ कर्पूरी ठाकुर के सम्बन्ध इस हद तल्ख़ हुए कि संघ के नेताओं ने उनपर निजी हमले किये और उन्हें सीधे-सीधे गालियाँ दी। लेकिन ऐसा तो कई समाजवादी नेताओं के साथ हुआ और इससे उनके इस ऐतिहासिक अपराध में कोई कमी नहीं आती है।

बहरहाल, बिहार में 1967 में महामाया प्रसाद सरकार में कर्पूरी ठाकुर ने शिक्षामन्त्री रहते हुए जब उर्दू को सूबे की दूसरी राजभाषा बनाने का फैसला लिया, तब संघ के नेताओं ने उनका विरोध किया और उन्हें "मौलाना कर्पूरी ठाकुर" कहकर सम्बोधित किया।

1977 में बिहार में बनी जनता पार्टी की सरकार में कर्पूरी ठाकुर मुख्यमन्त्री थे। उनके ही कार्यकाल में 1978 में पिछड़ी व अत्यन्त पिछड़ी जातियों की स्थिति पर मुँगेरी लाल कमीशन की रिपोर्ट आयी। इसी रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए पिछड़ी और अत्यन्त पिछड़ी जातियों को अलग-अलग आरक्षण देने की बात कर्पूरी ठाकुर ने की। इसी फैसले को बाद में कर्पूरी ठाकुर फॉर्मूला कहा गया। 1979 में जब पिछड़ों और अत्यन्त पिछड़ों के लिए आरक्षण की बात उठाई गयी, तो सबसे पहले आर.एस.एस. और भविष्य के भाजपाइयों ने ही विरोध के स्वर उठाये थे और आज पिछड़ी व अतिपिछड़ी जातियों के वोट को लपकने के लिए वे कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न दे रहे हैं! इस फॉर्मूले के विरोध में तत्कालीन जनसंघ के नेता कैलाशपति मिश्र के नेतृत्व में कर्पूरी ठाकुर की सरकार से समर्थन खींच लिया गया, जिससे कर्पूरी ठाकुर की सरकार गिर गयी। लेकिन बात यही तक नहीं रुकी, राज्य भर में इस फॉर्मूले के विरोध में संघ के नेताओं की शह पर हिंसक प्रदर्शन हुए। उस वक्त संघ के नेता "ये आरक्षण कहाँ से आयी, कर्पूरी ठाकुर के माई बियायी" जैसे स्त्री विरोधी नारों से कर्पूरी ठाकुर का विरोध करते थे। इस दौरान बिहार की पिछड़ी और अत्यन्त पिछड़ी आबादी के समक्ष संघ की जो सवर्णवादी और आरक्षण-विरोधी छवि बनी, वह आज भी एक हद तक बरकरार है। लेकिन कर्पूरी ठाकुर के आरक्षण पर बिल लाने के बाद पिछड़ी जातियों के आरक्षण की बात आगे चलकर राष्ट्रीय मुद्दा बन गयी। यहाँ तक की तत्कालीन प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई (जो उस वक़्त तक आरक्षण के पक्ष में नहीं थे) के निर्देश पर बी.पी मण्डल की अध्यक्षता में "सोशली एण्ड एजुकेशनली बैकवर्ड क्लासेस कमीशन" का गठन किया गया, जिसे मण्डल कमीशन भी कहा जाता है। परन्तु, 1980 में इस कमीशन की रिपोर्ट आने और इसके सिफ़ारिशों को लागू करने के पहले मोरारजी देसाई की सरकार गिर गयी। फिर अगले एक दशक तक इस रिपोर्ट की सिफारिशों को लागू करने के लिए पहले इन्दिरा गाँधी की सरकार और बाद में राजीव गाँधी की सरकार पर लगातार दबाव बनाया जाता रहा। यही वह समय था, जब मण्डल आयोग के बहाने बिहार में लालू यादव, शरद यादव, रामविलास पासवान और उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव अपना कद देश की राजनीति में बढ़ा रहे थे। भाजपा तात्कालिक तौर पर मण्डल की राजनीति के खिलाफ़ राम मन्दिर के बहाने कमण्डल की राजनीति को हवा दे रही थी। जब 1990 में वीपी सिंह की सरकार ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करते हुए सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों के आरक्षण की घोषणा की, तब भाजपा ने इसका मुकाबला राम मन्दिर आन्दोलन मे तेजी लाते हुए देश भर में रथयात्रा निकाल कर किया। इस यात्रा के दौरान उस वक़्त भाजपा व संघ के नेता अपने भाषणों में मण्डल आयोग की सिफारिशों को हिन्दू विरोधी करार देते थे। कर्पूरी ठाकुर को इसका ज़िम्मेदार बताते थे। स्पष्ट है कि आज पिछड़ों के वोट बैंक में अपनी सेंध को बढ़ाने के लिए भाजपा को अपने सुर बिल्कुल बदलने की ज़रूरत पड़ी है, तो उसने बदल दिये हैं। इतिहास ने दिखलाया कि मण्डल की राजनीति ने भी अन्ततः फ़ासीवादी शक्तियों के लिए एक वोट बैंक तैयार करने का काम किया। तात्कालिक तौर पर पूँजीवादी राजनीति के दायरे के भीतर भी मण्डल व कमण्डल का अन्तरविरोध केवल आर्थिक संकट से ग्रस्त देश में जनता के असन्तोष को अस्मितावादी पूँजीवादी राजनीति के दायरे में सोख लेने के लिए ही था। लेकिन जिस तरीके से भाजपा ने इस मसले पर अपने सुर बदले हैं, वह उसकी धुर अवसरवादी फ़ासीवादी राजनीति की सच्चाई को बेपर्द करता है।

क्या यह सच में मण्डल की राजनीति की वापसी का दौर है?

भाजपा व संघ ऐसे राजनीतिक स्टण्ट करके खुद को पिछड़ी व दलित जातियों का हितैषी साबित करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन असलियत यह है कि वर्ष 2014 के बाद से, यानी मोदी के सत्तासीन होने के बाद से, दलितों और आदिवासियों के खिलाफ़ हो रहे अपराधों में आज क्रमशः 27.3 % और 20.3 % की बढ़ोतरी हुई है।अकेले वर्ष 2021 में 50,900 दलित विरोधी अपराध दर्ज किये गए। आज भी ऊना काण्ड लोगों की स्मृतियों में भयावाह सत्य की तरह ज़िन्दा है। एक तरफ़ तो दलितों के खिलाफ़ अत्याचार बढ़े हैं तो दूसरी ओर आर्थिक तौर पर भी उनके हालात बदतर होते गए हैं। यूनाइटेड नेशंस की एक रिपोर्ट के अनुसार हर 6 में से 5 ग़रीब व्यक्ति (मल्टीडिमेंशनल पॉवर्टी इण्डेक्स के हिसाब से) तथाकथित निम्न व अनुसूचित जातियों व जनजातियों से आते है। सरकारी नौकरियों में भी पिछले दस सालों में पिछड़ी जातियों की भागीदारी का स्तर और नीचे गया है। भारत सरकार के आँकड़ों के ही अनुसार, 2014 में सीधी भर्ती और पदोन्नति के माध्यम से की गई कुल सरकारी नियुक्तियों में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व 17.97%, अनुसूचित जनजातियों की नुमाइन्दगी 8.26% और अन्य पिछड़े वर्गों की नुमाइन्दगी 31.50% थी। लेकिन 2021 में प्रतिनिधित्व का यह प्रतिशत घटकर अनुसूचित जातियों के लिए 17.07%, अनुसूचित जनजातियों के लिए 7.57% और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 30.68% हो गया है।

हम जानते हैं कि भारत में पूँजीवाद ने हमेशा ही सवर्णवाद और उच्च जाति के श्रेष्ठताबोध का अपने लिए इस्तेमाल किया है और उसे प्रतिसन्तुलित करने के लिए दलितों, आदिवासियों, औरतों, व ग़रीब वर्गों से आने वाले पिछड़ी जातियों की आबादी को अस्मितावाद और प्रतीकवाद की अन्धी गलियों में घुमाया है। भाजपाई फ़ासीवादी तो इस काम को करने की कुशलता को नयी ऊँचाइयों पर ले गये हैं। ऊपर बताये आँकड़ों से भाजपाई फ़ासीवाद का गन्दा दलित-विरोधी, आदिवासी-विरोधी चेहरा दिख जाता है। अपनी इस सवर्णवादी सच्चाई को छिपाने के लिए आज दलित व पिछड़ी जातियों के बीच भाजपा व संघ अस्मितावाद और प्रतीकों की राजनीति कर रहे हैं। भारत की चुनावी राजनीति इस बात का पुख़्ता प्रमाण है कि अस्मितावादी राजनीति देर-सबेर हमेशा ही दक्षिणपन्थी राजनीति में समाहित हो जाती है। इसलिये अगर कोई यह सोच रहा है कि जेपी-लोहिया ब्राण्ड नामधारी समाजवादियों की मण्डल की राजनीति से भाजपा व संघ की फ़ासीवादी राजनीति का मुक़ाबला किया जा सकता है, तो फ़िर वह ख़ुद को धोख़े में रख रहा है। इसके अतिरिक्त मण्डल की राजनीति की वापसी जैसी कोई चीज़ अगर हो भी तो शायद इसे 90 के दशक जैसा जन समर्थन नहीं मिल पायेगा। उस दौर में दलित छात्र और युवाओं ने मण्डल कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू करने के लिए आन्दोलनों में शिरकत की, क्योंकि तब रोज़गार मिलने की खोखली ही सही, पर आशा थी। आज तीन दशक के बाद हालात बिल्कुल अलग हैं। आज देश में रोज़गार को स्थिति से हम सभी वाक़िफ हैं। सरकारी क्षेत्र हो या निजी क्षेत्र रोज़गार के अवसर लगातार घटे है। ऐसे में आरक्षण की बात ही बेमानी हो जाती है। आरक्षण की सीमा बढाकर अगर 70 फ़ीसदी भी कर दी जाये तो भी पिछड़ी जातियों व दलितों के 10 प्रतिशत युवाओं को नौकरी नहीं दी जा सकती है। साथ ही, पिछले 30 वर्षों में विशेषकर पिछड़ी जातियों के बीच से एक धनी फार्मर-कुलक वर्ग भी पैदा हुआ है, जिसे प्रतिक्रियावादी राजनीति ने अपने दायरे में समेटा है। उसका एक हिस्सा शहरी नौकरियों में भी गया है और व्यवसाय में भी गया है। समाज में मण्डल की राजनीति का वर्गीय आधार भी पहले के मुकाबले कमज़ोर पड़ा है।

और अन्त में...

आज इस बात को समझना हमारे लिए ज़रूरी है कि सामाजिक न्याय की लड़ाई व्यापक मेहनतकश जनता के आर्थिक व राजनीतिक हितों की लड़ाई में शामिल हुए बिना नहीं लड़ी जा सकती है। भाजपा की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का जवाब सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीति द्वारा ही दिया जा सकता है। और कोई भी दूसरा रास्ता इस फ़ासीवादी विषबेल को खाद पानी देने का ही काम करेगा। दलितों व आदिवासियों को, स्त्रियों को व आम मेहनतकश घर से आने वाली पिछड़ी जातियों के लोगों को सामाजिक दमन और आर्थिक शोषण दोनों से ही मुक्ति पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे में नहीं मिल सकती क्योंकि उनकी इस स्थिति को बनाये रखने में मौजूदा शासक वर्ग, यानी पूँजीपति वर्ग का हित है। यह बात दीगर है कि अपनी व्यवस्था द्वारा ही पैदा किये गये इस सामाजिक दमन और आर्थिक शोषण पर हमारे असन्तोष को ग़लत दिशा में मोड़ देने के लिए किसी न किसी किस्म की अस्मितावादी राजनीति को हमारे बीच फैलाया जाता है, चाहे वह मण्डल की राजनीति हो या कमण्डल की।

मोदी सरकार अब काशी-मथुरा के नाम पर साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की फ़िराक़ में

(पेज 1 से आगे)

प्रतिष्ठा पर जैसा माहौल बनाना चाहते थे, वह बन नहीं सका। इसीलिए तो फ़ौरन संघ परिवार का नेतृत्व ज्ञानवापी के मसले को गरमाने में लग गया। साथ ही, हल्द्वानी से लेकर दिल्ली, उन्नाव, मुम्बई और धारवाड़ तक में दंगे भड़काने की कोशिशें जारी हो गयीं। इसी बीच, उत्तराखण्ड में धामी सरकार ने 'यूनीफ़ॉर्म सिविल कोड' के नाम पर एक साम्प्रदायिक कोड लाने की प्रक्रिया शुरू कर दी जो सीधे-सीधे धार्मिक अल्पसंख्यकों और विशेष तौर पर मुसलमानों के प्रति भेदभाव का रवैया रखता है। अमित शाह ने इसी बीच एलान कर दिया कि अप्रैल में लोकसभा चुनावों के पहले ही नागरिकता संशोधन कानून (सी.ए.ए.) लागू कर दिया जायेगा। इसके अलावा, विपक्षी पूँजीवादी पार्टी के नेताओं को डरा-धमकाकर *जेल या भाजपा में* डालने का काम भी पहले से कहीं ज़्यादा ज़ोर-शोर से मोदी सरकार ने शुरू कर दिया। माने कि राम मन्दिर के उद्घाटन को लेकर मचाये गये शोर-गुल के बावजूद भाजपा सन्तुष्ट नहीं हो पा रही है और एक भय उसको सता रहा है।

भाजपा और संघ परिवार इस बात से भी परेशान हैं कि ईवीएम धाँधली पर पहली बार ऐसा शोर मच रहा है। सुप्रीम कोर्ट के वकीलों से लेकर नामी-गिरामी पत्रकारों, इन्जीनियरों, बुद्धिजीवियों ने ईवीएम धाँधली की सच्चाई को जनता के सामने लाना शुरू किया है, चुनाव आयोग की असलियत जनता के सामने इस सवाल पर बिल्कुल नंगई के साथ सामने आ रही है। निश्चित तौर पर, इस पर यदि कोई जुझारू जनान्दोलन नहीं खड़ा होता, या समूचा पूँजीवादी विपक्ष एकजुट होकर ईवीएम हटाने की माँग को लेकर चुनावों के बहिष्कार का फैसला नहीं लेता (जिसकी हिम्मत विपक्षी गठबन्धन जुटा नहीं पा रहा है) तो चुनाव फिर से ईवीएम से ही होंगे और 'आयेगा तो मोदी ही'! लेकिन मोदी सरकार और संघ परिवार जानते हैं कि एक बार जनता के बहुलांश का भरोसा इससे उठ गया तो उनके फ़ासीवादी शासन के वर्चस्व में कमी आयेगी और वह ज़्यादा क्षणभंगुर और कमज़ोर बनेगा। इसके अलावा, शासक वर्ग के बीच के धड़ों के बीच जारी विवाद, यानी खेतिहर पूँजीपति वर्ग और औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपति वर्ग के बीच मौजूद विवाद के कारण भी पूँजीवादी चुनावी राजनीति के दायरे के भीतर मोदी सरकार के सामने एक दुविधा है।

इन चुनौतियों के जवाब में भाजपा वही कर रही है जो वह कर सकती है। वह देश में साम्प्रदायिकता और अन्धराष्ट्रवाद की लहर को हवा देने की कोशिशों में है। नरेन्द्र मोदी को इस साम्प्रदायिक लहर और अन्धराष्ट्रवाद के नायक के तौर पर पेश करने के लिए कारपोरेट घरानों की मदद से भाजपा और मोदी सरकार हज़ारों करोड़ रुपये ख़र्च कर रही है। इसके साथ, ख़ैराती कल्याणवाद की कुछ नीतियों को भी लागू किया जा रहा है, हालाँकि उनका प्रचार उनके लागू किये जाने के असर से कहीं ज़्यादा किया जा रहा है। इसके साथ ही, ई.डी., सी.बी.आई. आदि एजेन्सियों का इस्तेमाल कर विपक्षी पार्टियों को तोड़ना, उनके प्रमुख नेताओं को ख़रीद लेना, उन्हें जेल या भाजपा में डालने की धमकी से डराना-धमकाना यह पहले हमेशा से ज़्यादा ज़ोर-शोर से मोदी सरकार आज कर रही है।

इन सारे कुकर्मों में राज्यसत्ता के समूचे ढाँचे के भीतर, यानी पुलिस, सेना, नौकरशाही, न्यायपालिका, चुनाव आयोग आदि के भीतर, संघी हाफ़पैण्टियों की दशकों के दौरान की गयी घुसपैठ भाजपा के सबसे ज़्यादा काम आ रही है। ज़रा सोचिये। एक तथाकथित सेक्युलर देश का प्रधानमन्त्री एक मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा में मुख्य यजमान के तौर पर विराजमान होता है, लेकिन उस पर देश का सुप्रीम कोर्ट चुप रहता है; ज्ञानवापी मस्जिद के परिसर के भीतर एक स्थानीय कोर्ट पूजा की आज्ञा दे देता है और उस पर देश की न्यायपालिका वादियों को एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े घुमाने का काम करती रहती है। देश का पुरातात्विक विभाग अपनी पुरातात्विक जाँच के नतीजे संघ परिवार के नेतृत्व के इशारों पर तय करता है। चण्डीगढ़ के मेयर के चुनावों में कैमरे पर धाँधली होती है, लेकिन सुप्रीम कोर्ट फटकार लगाने के अलावा कोई बड़ी कार्यकारी कार्रवाई अभी तक नहीं कर पाया है। उच्च न्यायलय में प्रक्रिया चल रही है। अगर मसला जनता का हो तो न्यायालय में 'प्रक्रिया चल रही है' वाक्यांश पढ़ते ही, हमारे सिर के कुछ बाल तो यूँ ही सफ़ेद हो जाते हैं! ख़ैर, यह सब सबके सामने खुलेआम होता है और साथ में हमें बताया जाता है कि देश में लोकतन्त्र है, सरकार सेक्युलर है, इत्यादि। इसी दौरान, क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के भीतर कुछ न करने के कार्यस्थगन प्रस्ताव को हाथ में लिये बैठे कुछ कौमवादी मूर्ख कहते हैं, कि अभी फ़ासीवाद नहीं आया है; अभी वो आयेगा और जब वह आयेगा, तब वे देख लेंगे!

इसके अलावा मीडिया की भूमिका की हम विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे, क्योंकि वह लिखने वाले और पढ़ने वाले, दोनों के ही लिए एक उबकाई लाने वाली कवायद हो सकती है। समूचा कारपोरेट मीडिया खुलेआम दंगाई की शर्मनाक भूमिका में है। न्यायपालिका का चरित्र यहाँ भी नंगा हो जाता है। खुलेआम दंगा फैलाने वाली झूठी कवरेज करने वाले मीडिया पर भी वह कुछ नहीं बोलता। लेकिन बिल्कुल झूठे आरोपों पर जनपक्षधर पत्रकारों को जेलों में ठूँस दिये जाने पर वह "नियम और कानून" से प्रक्रिया चलाने के नाम पर उन्हें जेलों में सड़ाता रहता है। जनता के पक्ष में आवाज़ उठाने वाले जननेताओं व व्यक्तियों को जेल में सड़ा दिया जाता है, जेल में ही मरने के लिए छोड़ दिया जाता है, उन्हें यातनाएँ दी जातीं हैं, उस पर न्यायपालिका "कानून के पालन और प्रक्रिया" का हवाला देकर कोई कदम नहीं उठाती। एक और वाक्य है, जो जनता को हमेशा उसके मसलों के न्यायाधीन होने पर बताया जाता है: 'कानून अपना काम कर रहा है'। फिर कानून काम करता ही जाता है, करता ही जाता है, पर काम पूरा होने से पहले अक्सर वादी मर जाता है! हाँ, अगर मसला किसी पूँजीपति के हित का हो, तो सुप्रीम कोर्ट आधी रात में सुनवाई कर उसके पक्ष में फैसला दे देता है। "राष्ट्रहित" का सवाल जो ठहरा! *विधायिका, कार्यपालिका से लेकर न्यायपालिका तक का भीतर से हो रहा फ़ासीवादी 'टेकओवर' जिसको नहीं दिखायी दे रहा, उसकी राजनीतिक रतौंधी का कोई इलाज नहीं है।*

लेकिन इन सबके बावजूद फ़ासीवादी हुक्मरान भयाक्रान्त ही हैं। क्यों? क्योंकि देश की आम मेहनतकश जनता में गुस्सा है; बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार और दमन के विरुद्ध उनके अन्दर एक सुलगता हुआ असन्तोष है। चूँकि यह असन्तोष एक क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव में सुसंगत राजनीतिक अभिव्यक्ति नहीं हासिल कर पा रहा है, इसलिए कई बार वह आकारहीन और अन्धा होता है और ऐसी सूरत में कई बार उसे साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संघ परिवार एक नकली दुश्मन देकर साम्प्रदायिक उन्माद में तब्दील करने में कामयाब हो जाता है। लेकिन यह भी सच है कि हर बार यह मुमकिन नहीं होता, संघ परिवार की इस साज़िश की कामयाबी बहुत-सी अन्य शर्तों पर भी निर्भर करती है। ऐसे में पूँजीवादी विपक्ष के नाकारे और दन्त-नखविहीन होने की सूरत में भी जनता का असन्तोष किसी सरकार के लिए ख़तरनाक हो सकता है। और अभी देश में ऐसी स्थितियाँ हैं, कि अपनी सारी तरकीबों और साज़िशों के बावजूद मोदी सरकार के लिए भविष्य परेशानियों और दिक्कतों से भरा हो सकता है। सिर्फ चुनाव जीत जाना ही इस आशंका को दूर नहीं कर सकता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के संकट के कारण मोदी सरकार के लिए जनविरोधी नीतियों को लागू करना, अन्धाधुन्ध निजीकरण, पूँजीवादी लूट, मज़दूरों-मेहनतकशों के शोषण व दमन को खुली छूट देना ज़रूरी है। मुनाफ़े की गिरती औसत दर के संकट से पूँजीपति वर्ग को फौरी राहत देने के लिए औसत मज़दूरी को घटाना और प्राकृतिक संसाधनों व सरकारी (जनता के) संसाधनों की निजी लूट को छूट देना मोदी सरकार की मजबूरी है। वास्तव में, यह आने वाली किसी भी पूँजीवादी सरकार की मजबूरी होगी, लेकिन हर पूँजीवादी सरकार यह काम उतने कारगर तरीके से नहीं कर सकती है, जितने कारगर तरीके से यह काम मोदी सरकार कर सकती है। वजह है मोदी सरकार का फ़ासीवादी चरित्र। यही वजह है कि यह मोदी सरकार के वश में ही नहीं है कि वह चुनावों के पहले कोई बड़ी कल्याणकारी योजना भी घोषित कर सके।

मोदी सरकार के ख़िलाफ़, उसकी जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ मेहनतकश जनता के जुझारू आन्दोलन खड़ा करना आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। पूँजीवादी चुनावी पार्टियों से बने विपक्ष से कोई उम्मीद पालकर रखना आत्मघाती होगा। अगर इन विपक्षी चुनावी पार्टियों का गठबन्धन अनपेक्षित रूप से चुनाव जीत भी जाये, तो वह भाजपा की किसी और भी ज़्यादा तानाशाह और बर्बर किस्म की सरकार के दोबारा चुने जाने की ज़मीन ही तैयार करेगा। अव्वलन, तो इस समय पूँजीवादी विपक्ष के लिए एकजुट रहना और एकजुट तरीके से चुनाव लड़कर जीतना ही बहुत मुश्किल है। नामुमकिन नहीं है, लेकिन बेहद मुश्किल ज़रूर है। लेकिन अगर ऐसा हो भी जाये तो वह फ़ासीवाद के एक नये, ज़्यादा बर्बर और उन्मादी उभार की ही ज़मीन तैयार करेगा। इसकी बुनियादी वजह है मौजूदा दौर में पूँजीवादी व्यवस्था का गहराता आर्थिक संकट, जिससे तत्काल उबर पाने की गुंजाइश बेहद कम है। ऐसे में, कोई गैर-फ़ासीवादी पूँजीवादी सरकार पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उपयुक्त नहीं है। यदि आपवादिक स्थिति में 2024 के लोकसभा चुनावों में भाजपा हार भी जाये, तो वह फ़ासीवादी उभार की एक नये स्तर पर ज़मीन ही तैयार करेगा।

दूसरी वजह है भारत में समूची राज्यसत्ता के पोर-पोर में फ़ासीवादी घुसपैठ, उसका भीतर से फ़ासीवादी 'टेकओवर'। आज के दौर में फ़ासीवादी भाजपा सरकार कोई आपवादिक कानून लाकर चुनावों को भंग कर दे या पूँजीवादी जनवाद के खोल का परित्याग कर दे, इसकी गुंजाइश न के बराबर है। फ़ासीवादी भी अपने ऐतिहासिक अनुभवों से सीखते हैं और आज किसी भी देश का फ़ासीवादी अपना हश्र हिटलर या मुसोलिनी जैसा नहीं होने देना चाहेगा। साथ ही, बुर्जुआ वर्ग भी सामान्य तौर पर इसके पक्ष में नहीं है। बहरहाल, फ़ासीवादी शक्तियाँ चुनाव हारने की सूरत में भी पूँजीपति वर्ग की एक राजनीतिक शक्ति और अनौपचारिक सत्ता का काम जारी रखेंगी और नये सिरे से सत्ता पर चढ़ाई की ज़मीन तैयार करेंगी। आर्थिक संकट का बुनियादी कारक और किसी ग़ैर-फ़ासीवादी सरकार की पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों को पूरा करने में असमर्थता, इसके लिए अनुकूल सन्दर्भ तैयार करेगा। **इसलिए जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को अपनी ताकत पर भरोसा करना चाहिए।** उसे रोज़गार, निशुल्क व समान शिक्षा, निशुल्क व समान चिकित्सा, सभी को भोगाधिकार के आधार पर आवास के अधिकार और साम्प्रदायिकता और भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए अपना स्वतन्त्र आन्दोलन खड़ा करना होगा।

निश्चय ही, अगर ऐसे आन्दोलन के पास एक सर्वहारा नेतृत्व नहीं होगा, अगर उसमें स्वत:स्फूर्तता का पहलू प्रधान होगा, तो भी वह एक लम्बे संघर्ष को न तो चला पायेगा और न ही जीत पायेगा। इसके लिए एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की अनिवार्यता स्पष्ट है। निश्चय ही, ऐसी पार्टी भी इन जनसंघर्षों को संगठित करने की प्रक्रिया में ही निर्मित और गठित हो सकती है। इसलिए ऐसे जुझारू जनसंघर्षों को खड़ा करने की प्रक्रिया में जनता के विभिन्न वर्गों और हिस्सों को, यानी कि मज़दूरों को, ग़रीब किसानों को, आम मेहनतकश जनता से आने वाले छात्रों, युवाओं व स्त्रियों को अपने क्रान्तिकारी जनसंगठन भी खड़े करने होंगे और साथ ही अपनी देशव्यापी क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण के कार्यभार को भी पूरा करना होगा।

(पेज 10 पर जारी)

मोदी सरकार अब काशी-मथुरा के नाम पर साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की फ़िराक़ में

(पेज 9 से आगे)

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये कार्यभार मुश्किल हैं, जटिल हैं और चुनौतियों और बाधाओं से भरे हुए हैं। यह भी सच है कि हमारे पास आराम से बैठने या धीमी गति से काम करने का वक़्त नहीं है। लेकिन हमें ये कार्यभार पूरे करने ही होंगे। इनके बिना, देश को बरबादी की गर्त में जाने से कोई ताक़त नहीं बचा सकती है। देश के कई क्रान्तिकारी जनसंगठन इन प्रयासों में लगे हुए हैं और 'भगतसिंह जनअधिकार यात्रा' नामक एक देशव्यापी यात्रा निकाल रहे हैं, जिसका मकसद इन असल मसलों पर जनता को जागृत, गोलबन्द और संगठित करना है। यह यात्रा 13 राज्यों और 84 जिलों से गुज़रते हुए 3 मार्च को दिल्ली पहुँचेगी। 'मज़दूर बिगुल' इस यात्रा का समर्थन करता है और अपने सभी पाठकों से इसमें शामिल होने की अपील करता है। 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' इस यात्रा के आयोजन में केन्द्रीय भूमिका निभा रही है। देश के पैमाने पर एक क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व खड़ा करने के रास्ते में यह एक छोटा-सा लेकिन अहम कदम हो सकता है।

आने वाले चुनावों में भी क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की ओर से रणकौशलात्मक हस्तक्षेप एक ज़रूरी कार्यभार है। पूरे देश के पैमाने पर इसे पूरा करने के लिए आज कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी पार्टी मौजूद नहीं है। लेकिन जिन स्थानों पर सर्वहारा पक्ष की नुमाइन्दगी करने वाला उम्मीदवार मौजूद है, व्यापक मेहनतकश जनता को उसे अपना समर्थन देना चाहिए। इस प्रकार के तर्क पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक नुमाइन्दे लगातार हमारे अन्दर बिठाते हैं कि स्थापित पूँजीवादी पार्टियों को वोट दो, क्योंकि वे ही जीत सकती हैं; जाति-धर्म के आधार पर वोट दो क्योंकि तुम्हारे "समुदाय" का उम्मीदवार ही तुम्हारे लिए कुछ करेगा या अगर वह कुछ भी न करे तो भी तुम इस पर "गर्व" तो कर ही सकते हो, इत्यादि। धनबल-बाहुबल की नुमाइश कर वे हमारी चेतना को भ्रष्ट करने का काम करते हैं। जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि हमारा "समुदाय" और कुछ नहीं बल्कि व्यापक मेहनतकश जनता की वर्गीय एकजुटता है, जब तक हम पूँजी की ताक़त की नुमाइश से प्रभावित होंगे, जब तक अपने असली मसलों को नहीं पहचानेंगे और अपने असली नुमाइन्दों को नहीं पहचानेंगे, तब तक हमें धोखा दिया जाता रहेगा, हम बेवकूफ़ बनते रहेंगे। **विकल्प बनाने से बनता है, वह कहीं आसमान से आपके बीच अवतरित नहीं होता है। और वास्तविक विकल्प हमेशा जनता बनाती है, इसके लिए कोई मसीहा नहीं प्रकट होता है।** जब तक हम यह नहीं समझते, हम अडानी-अम्बानी-टाटा-बिड़ला जैसे पूँजीपतियों, धनी फार्मरों व कुलकों, ठेकेदारों, बिचौलिये, दलालों और धनी व्यापारियों की नुमाइन्दगी करने वाले राजनीतिक दलों के हाथों फ़रेब का शिकार होते रहेंगे।

हमेशा की तरह, आज हमारे देश में भी साम्प्रदायिक फ़ासीवाद जनता का सबसे बड़ा दुश्मन है। इन्हें हर मंच, हर जगह, हर क्षेत्र में नकारना हमारा कर्तव्य है। यह साम्प्रदायिकता के आधार पर टुटपुँजिया वर्ग का अन्धा प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन खड़ा करते हैं और इसके ज़रिये बड़ी पूँजी की सेवा करते हैं। अनिश्चितता और असुरक्षा का मारा टुटपुँजिया वर्ग इनके साम्प्रदायिक प्रचार के समक्ष अरक्षित होता है और अक्सर साम्प्रदायिक उन्माद में बह जाता है। क्रान्तिकारी शक्तियों को निम्न मध्यवर्गीय व मध्यम मध्यवर्गीय जनता के बीच भी व्यापक प्रचार कर इस सच्चाई को सामने लाना चाहिए कि फ़ासीवादी सत्ता वास्तव में उनके हितों की सेवा नहीं करती, बल्कि उनके हितों के विरुद्ध काम करती है। पेंशन ख़त्म करने से लेकर सरकारी नौकरियों में भर्ती पर रोक लगाना, सार्वजनिक उपक्रमों का लगातार निजीकरण करना, महँगाई और बेरोज़गारी को बढ़ाने वाली नीतियाँ लागू करना, भला उनके हित में कैसे हैं? हमें साम्प्रदायिकता के विरुद्ध भी व्यापक जनता में लगातार प्रचार करना चाहिए और यह बात समझानी चाहिए कि शहीदे-आज़म भगतसिंह ने क्या कहा था। उन्होंने कहा था कि धर्म सभी का व्यक्तिगत मसला है और इसे राजनीति और सामाजिक जीवन में कतई नहीं लाना चाहिए। कोई पार्टी या सरकार अगर यह करती है, तो उसका मक़सद केवल एक होता है: जनता को बाँटकर, धनी वर्गों की सेवा करना। आज मोदी सरकार ठीक यही कर रही है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरद्वारे बनाना सरकार का काम नहीं है। आस्था रखने वाले लोग अपनी आस्था के अनुसार और दूसरों के जनवादी अधिकारों का हनन किये बिना कोई भी पूजा स्थल बनायें, ये उनका व्यक्तिगत मसला है। लेकिन इसमें सरकार की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। कोई राजनीतिक दल भी यदि ऐसा करे, तो उसका बहिष्कार होना चाहिए। यदि कोई सरकार ऐसा करती है, तो इसका एक ही मतलब है: वह रोज़गार, महँगाई, शिक्षा, चिकित्सा, आवास, भ्रष्टाचार और जनता के जनवादी अधिकारों के मसले पर नाकाम हो चुकी है।

इन बातों को समझना हमारे लिए बेहद ज़रूरी है। ऐसी समझदारी से लैस होकर ही हम अपने हितों के लिए संगठित हो सकते हैं और देश में जारी राजनीतिक वर्ग संघर्ष में एक अर्थपूर्ण हस्तक्षेप कर सकते हैं।

आइए अपने सही इतिहास को जानें!

(पेज 7 से आगे)

है। महाभारत में कई यज्ञों की चर्चा मिलती है जैसे: अश्वमेघ, पुण्डरीक, गवामयन, अग्निजित् , बृहस्पतिसव आदि। फिर भी, यह बात निर्विवाद है कि इस वर्णन में कहीं भी मूर्तिपूजा का वर्णन नहीं मिलता। श्रीकृष्ण या युधिष्ठिर की आन्हिक क्रियाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन होने पर भी उनमें या अन्यत्र कहीं भी देवताओं की पाषाणमयी या धातुमयी मूर्तियों के पूजन का वर्णन नहीं मिलता। इससे हम निश्चयपूर्वक इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि महाभारत काल में या महाभारत-काल तक आर्यों के आन्हिक धर्म (नित्यकर्म) में किसी भी देवता के पूजन का समावेश नहीं हुआ था। किसी भी गृह में देव की स्थापना करके उनकी पूजा करने की विधि शुरू नहीं हुई थी। किसी भी गृह्यसूत्र में पूजा-विधि का विवरण नहीं है। अतः यह निर्विवाद है कि देवपूजा की प्रथा महाभारत-काल के अनेक सालों बाद शुरू हुई।"

अब आते हैं इस सवाल पर कि इतिहास में मन्दिर या किसी भी धर्म के पूजा स्थल क्यों लूटे जाते थे? अगर विस्तार में अध्ययन करें तो पायेंगे कि पुराने ज़माने में भी धर्म और देवताओं ने अपने समय के आर्थिक और राजकीय ढाँचे का ही अनुकरण किया है। कारण यह स्पष्ट है कि मन्दिरों के लिए धन-दौलत इन राजाओं से ही मिलती थी और इसी धन-दौलत के लिए बाद के शासकों ने मन्दिरों को लूटा है। गुणाकर मुले उसी किताब में लिखते हैं: *"अतीत को केवल तत्कालीन वर्ग-संघर्ष एवं आर्थिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही सही तौर से समझा जा सकता है। बुतपरस्तों के मन्दिर तोड़ने का काम केवल मुस्लिम शासकों ने ही नहीं, हिन्दू राजाओं ने भी किया है। पुराने ज़माने में पराजित राज्यों से मूर्तियाँ उठा लाना एक मामूली बात थी। परमार शासक सुभटवमन (1199-1210 ई.) ने गुजरात पर आक्रमण करके दभोई और काम्बे के जैन मन्दिरों को खूब लूटा। इस मामले में कश्मीर के हिन्दू शासक हर्ष (1089-1101 ई.) का उदाहरण बेजोड़ है। कल्हण अपनी राजतरंगिणी में जानकारी देता है कि मन्दिरों को तोड़ने के लिए हर्ष ने 'देवोत्पाटननायक' नाम से एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की, और इस अधिकारी का काम था मन्दिरों को तोड़ना, मूर्तियों को गलाना। इस प्रकार हर्ष ने अपने राज्य के, चार को छोड़कर, सारे मन्दिरों को लूटा। किसलिए? इसलिए नहीं कि हर्ष मूर्तिपूजा का विरोधी था, बल्कि इसलिए कि उसे धन की ज़रूरत थी। मन्दिरों की सम्पत्ति को लूटकर और मूर्तियों को गलाकर उसने अपना खजाना भरा और उसका दूसरे कामों में इस्तेमाल किया। भारत के सभी मुस्लिम शासक औरंगज़ेब की तरह बुतशिकन नहीं थे। उसी प्रकार, भारत के सभी हिन्दू शासक हर्ष की तरह देवोत्पाटक नहीं थे। मुहम्मद बिन कासिम के हमले के बाद सिन्ध अरबों के हाथ में चला गया था, तो उस समय उन्होंने हिन्दू मन्दिरों को कोई हानि नहीं पहुँचाई थी। तीन शताब्दियों बाद मुहम्मद गज़नवी ने सोमनाथ को धन के लिए लूटा, जैसा कि उसके समकालीन कश्मीर के हिन्दू शासक हर्ष ने धन के लिए ही मन्दिरों को लूटा था। एक तथ्य यह भी है कि मुसलमानों शासकों के हाथों सबसे अधिक तबाही बौद्ध मन्दिरों और विहारों की हुई है।"*

इतिहासकार डीएन झा ने भी अपनी किताब 'अगेंस्ट द ग्रेन- नोट्स ऑन आइडेण्टिटी एण्ड मीडिएवल पास्ट' में ब्राह्मण राजाओं के हाथों बौद्ध धर्मावलम्बियों के आस्था स्थलों की तबाही का उल्लेख किया है। डीएन झा लिखते हैं, *"एक तरफ़ जहाँ सम्राट अशोक भगवान बुद्ध को मानने वाले थे, वहीं उनके बेटे और भगवान शिव के उपासक जालौक ने बौद्ध विहारों को बर्बाद किया। पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों का बड़ा उत्पीड़न किया। उनकी विशाल सेना ने बौद्ध स्तूपों को बर्बाद किया और बौद्ध विहारों को आग के हवाले कर दिया। शुंग शासनकाल में बौद्ध स्थल साँची तक कई स्थानों पर तोड़फोड़ के सबूत मिले हैं।"* चीनी यात्री ह्वेनसाँग की भारत यात्रा का हवाला देते हुए झा कहते हैं, *"शिव भक्त मिहिरकुल ने 1,600 बौद्ध स्तूपों और विहार को नष्ट किया और हज़ारों बौद्धों को मार दिया। प्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों को हिन्दू कट्टरपन्थियों ने आग लगा दी और इसके लिए ग़लत तरीक़े से बख़्तियार खिलजी को ज़िम्मेदार ठहरा दिया, जो वहाँ कभी नहीं गये थे। इस बात में कोई शक़ नहीं है कि पुरी ज़िले में स्थित पूर्णेश्वर, केदारेश्वर, कन्टेश्वर, सोमेश्वर और अंगेश्वर को या तो बौद्ध विहारों के ऊपर बनाया गया या फिर उनमें उनके सामान का इस्तेमाल किया गया।"*

वहीं एक दौर में हिन्दू धर्म के कई सम्प्रदाय जैसे शैव-वैष्णव-शाक्त-स्मार्त के भी आपस में झगड़े चले और उन्होंने भी एक दूसरे के पूजा स्थलों को नष्ट किया। इतिहास में और पीछे जायें तो यह तर्क हड़प्पा सभ्यता तक जा सकता है। **सोचिए अगर कोई कहे कि वैदिक धर्म से पहले हड़प्पा सभ्यता के जो पूजा स्थलों मौजूद थे, अब वहाँ चाहे मन्दिर हो या मस्ज़िद उसे हटाकर दुबारा हड़प्पा सभ्यता का पूजा स्थल बनाया जाना चाहिए। यह हास्यास्पद लग सकता है। हाँ बिल्कुल! यह पूरा तर्क ही हास्यास्पद है। आप ख़ुद सोचिए क्या अगर आज इसका हिसाब करने लगे कि कब कहाँ कौन-सा पूजा स्थल बना था तो क्या ये सवाल हल हो सकता है**?

आज हमारे देश में पर्याप्त पूजा स्थल हर धर्म के लोगो के लिए मौजूद है। आज यह किसी के लिए कोई सवाल ही नहीं है कि किस जगह पर पहले मन्दिर था या मस्ज़िद। इसे आज मुद्दा भाजपा व संघ परिवार द्वारा बनाया जा रहा है ताकि हम असल सवालों पर न सोच सकें।

मोदी सरकार के पास अब यही मुद्दे बचे हैं, जिसके ज़रिये वह 2024 का चुनाव जीत सकती है। पहले राम मन्दिर के नाम पर दंगे हुए, अब ज्ञानवापी के नाम पर उन्माद फैलाने की कोशिश जारी है और हो सकता है चुनाव तक काशी-मथुरा तक भी यह आग पहुँच जाये। **भाजपा व संघ परिवार आपकी धार्मिक भावनाओं का शोषण कर आप को ही मूर्ख बना रही है। मोदी सरकार धर्म का राजनीतिक इस्तेमाल कर रही है।** यह आपको तय करना है कि आपको क्या चाहिए। क्या आपको शिक्षा-चिकित्सा-रोज़गार-आवास के अपने बुनियादी हक़ चाहिए, एक बेहतर जीवन चाहिए या फिर आपको मन्दिर-मस्ज़िद के झगड़ों में ही उलझे रहना है।

याद रखें कि शहीदे–आज़म भगतसिंह ने फाँसी चढ़ने से पहले देश के मेहनतकशों को क्या सन्देश दिया था। भगतसिंह ने देश के नौजवानों, मज़दूरों व ग़रीब किसानों से कहा था **"हम धर्म के मामले में अलग होकर भी अपनी राजनीति में एक हो सकते हैं और हमें होना ही होगा। इसके बिना हम मालिकों के जमात के हाथों धोखा खाते रहेंगे, लुटते रहेंगे और कुचले जाते रहेंगे।"**

लोकसभा चुनाव से ठीक पहले राम रहीम की पैरोल पर रिहाई के मायने

● अदिति

पिछले ढाई साल से राम रहीम हरियाणा के रोहतक (सुनारिया जेल) में बन्द है और इन ढाई वर्षों के भीतर 9 बार राम रहीम पैरोल पर बाहर आ चुका है। आज़ाद भारत के इतिहास में यह अवश्य ही पहली बार हुआ होगा कि हत्या और बलात्कार जैसे संगीन अपराधों में सज़ा काट रहे किसी व्यक्ति को दो वर्ष में 174 दिनों के लिए पैरोल मिली हो। पहली बार, 21 मई 2021 को बीमार माँ से मिलने के लिए गुरमीत राम रहीम को पैरोल मिली। दूसरी बार, 7 फरवरी 2022 में गुरमीत राम रहीम को 21 दिन की पैरोल मिली। तीसरी बार, 17 जून 2022 को 30 दिन की पैरोल मिली। चौथी बार, 15 अक्टूबर 2022 को 40 दिन की पैरोल मिली। पाँचवी बार, 21 जनवरी 2023 को 40 दिन की पैरोल मिली। छठी बार, 20 जुलाई 2023 को 30 दिन की पैरोल मिली। सातवीं बार, 15 अगस्त 2023 को जन्मदिन के मौके पर गुरमीत राम रहीम को पैरोल दी गयी। इससे पहले राजस्थान चुनाव से ठीक चार दिन पहले उसे फिर पैरोल मिली थी।

लोकसभा चुनाव से कुछ समय पहले ही मिली पैरोल दर्शाती है कि राम रहीम के डेरे और हरियाणा सरकार के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। दोषी राम रहीम को दो साध्वियों के साथ दुष्कर्म करने के आरोप में 28 अगस्त, 2017 को 20 साल की सज़ा सुनायी गयी थी। इसके बाद दोबारा आरोप सिद्ध हुआ था, जिसके चलते बाबा को उम्रकैद हुई थी। पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति की हत्या में अदालत ने राम रहीम को 17 जनवरी 2019 को उम्र कैद की सज़ा सुनाई थी।

डेरा सच्चा सौदा की स्थापना 1948 में हुई थी जिसमें अलग-अलग समय पर डेरा प्रमुख रहे। सितम्बर 1990 से गुरमीत राम रहीम सिंह डेरा के प्रमुख पद पर नियुक्त किये गये। 1990 तक डेरा पंजाब और हरियाणा के दलित ग़रीबों और पिछड़ी जाति के काफी लोकप्रिय हो चुका था। पंजाब और हरियाणा में कांग्रेस के समर्थक के तौर डेरे ने अहम भूमिका निभाई। लेकिन राम रहीम के डेरा प्रमुख बनने के बाद डेरे ने लोकप्रियता और राजनीति में नये आयाम हासिल किये। राम रहीम ने ख़ुद को एक मॉडर्न बाबा का एक अनूठा कल्ट बनाया। जेड सुरक्षा के बीच और ख़ुद को भगवान बताकर बाबा ने लोगों का खूब ध्यान बटोरा। इसी के साथ और अधिक प्रसिद्धि पाने के लिए दलित और पिछड़ी जातियों के उभरते कारोबारी और बड़े व्यापारी भी बाबा के अनुयायी बन गये। डेरा उनके लिए संजीवनी बूटी से कम नहीं था। धीरे-धीरे डेरा सच्चा सौदा का प्रभाव पंजाब, हरियाणा से निकलकर दिल्ली, राजस्थान, हिमाचल और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी दिखने लगा। इसी बीच डेरे और बाबा पर बहुत से विवाद भी उठ खड़े हुए, यौन उत्पीड़न के कई बार आरोप लगे, लेकिन बाबा के राजनीतिक दबाव के कारण यह मामले तुरन्त बन्द कर दिये गये। राम रहीम के आपराधिक चरित्र के साफ़ होने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगा। भक्तों को बात बहुत बाद में समझ आती है। लेकिन व्यापक जनता में उसका चरित्र बिल्कुल साफ़ है।

राम रहीम की एक और भूमिका भी थी। व्यापक मेहनतकश दलित व पिछड़ी आबादी को अपने जीवन की कुरूप सच्चाइयों को स्वीकार करने, झूठी धार्मिक आशा करने, बाबा के चमत्कार पर यक़ीन करवाने के लिए राम रहीम के डेरे ने अहम भूमिका निभायी। हमेशा ही मज़दूरों-मेहनतकशों के असन्तोष की आग पर धार्मिक कीचड़ फेंक कर उसे शान्त करने की कोशिश की जाती है। स्वयं अपनी अतार्किक कूपमण्डूक व ढकोसलेपन्थी सोच के अलावा, तमाम पूँजीपति, दुकानदार, ठेकेदार, व्यापारी इस प्रकार के डेरों की ठीक इसीलिए मदद करते हैं क्योंकि यह मज़दूरों-मेहनतकशों के ऊपर सामाजिक अनुशासन और नियन्त्रण को सुनिश्चित करने का एक मैकेनिज्म देता है। जैसा कि कहा गया है, 'अमीरों ने ग़रीबों के लिए धर्म और भगवान के अलावा कुछ नहीं छोड़ा है।'

डेरा सच्चा सौदा पहले हरियाणा और पंजाब की राजनीति में कांग्रेस का पक्षधर रहा लेकिन जैसे-जैसे कांग्रेस का सितारा डूबता गया, इस डेरे ने भी नये राजनीतिक विकल्प खोजना शुरू कर शुरू कर दिए 2014 के लोकसभा चुनाव और उसके बाद हरियाणा के विधानसभा चुनाव में डेरा सच्चा सौदा ने भाजपा को अपना समर्थन दिया। 2024 के ठीक चुनाव से पहले भाजपा सरकार हरियाणा में अपनी साख बचाने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद इस्तेमाल कर रही है। ताकि चुनाव में जीत हासिल हो सके। हरियाणा में भाजपा की खट्टर सरकार की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। ऐसे में, गैर-जाट वोटों के संकेन्द्रण के लिए भी उसे डेरा की ज़रूरत है। इसलिए बलात्कारी राम रहीम अचानक चमत्कारी राम रहीम बन जाता है और उसे लगातार पैरोल पर पैरोल मिलती रहती है।

सभी जानते हैं कि विभिन्न कारणों से हालिया महीनों में खट्टर सरकार की खूब किरकिरी हुई है। हरियाणा बेरोज़गारी में देश में पहला राज्य बन गया। सीएनआईई की रिपोर्ट के अनुसार हरियाणा में बेरोज़गारी दर 35.7% दर्ज़ की गयी, यह आँकड़ा खट्टर सरकार के कार्यकाल का है। उसी प्रकार देश के स्तर पर फ़ासीवादी मोदी सरकार का 10 साल का कार्यकाल जनता के लिए नरक के समान साबित हुआ। अपनी नाक़ामियों को छुपाने के लिए भाजपा सरकार ने हथकण्डों का सहारा लिया। लोगों को जाति के नाम पर धर्म के नाम पर बाँटा। इसी कड़ी में भाजपा सरकार ने बाबाओं का भी खूब इस्तेमाल किया। राम रहीम, आसाराम और रामपाल जैसे पाखण्डी बाबाओं का राजनीतिक रोटी सेकने के लिए भाजपा सरकार ने खूब इस्तेमाल किया। हाल में कुछ और उदाहरण हमारे सामने हैं: बागेश्वर बाबा, परमानन्द महाराज और सद्गुरु महाराज। फ़ासीवादी सोच और विचारधारा की विषबेल को संघ परिवार अपनी शाखाओं, स्कूलों आदि में तो पनपा ही रहा है, लेकिन इन तमाम बाबाओं के आश्रमों में भी फ़ासीवाद को फलने फूलने के लिए पर्याप्त खाद-पानी दिया जा रहा है और ये डेरे, आश्रम आदि विशेष तौर पर आम मेहनतकश जनता, मज़दूरों व टुटपुँजिया वर्गों में इस काम को कर रहे हैं।

भारत जैसे देश में जहाँ की आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा ऐतिहासिक तौर पर वैज्ञानिक चेतना की कमी और बौद्धिक पिछड़ेपन का शिकार है, वहाँ तमाम तरह के बाबाओं का मायाजाल फैलाया जाता है। इन बाबाओं ने लोगों की आस्था का फ़ायदा उठाकर उनकी आँखों पर अन्धविश्वास और अतार्किकता की पट्टी बाँध दी है। धर्म राजनीतिक व चुनावी समीकरण तय करने में बेहद ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यही कारण है कि इन तमाम बाबाओं को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होता है। इनके काले धन्धे क़ानून व राजनीति की देखरेख में फलते-फूलते हैं, जिसके बदले में इन चुनावी पार्टियों को इन बाबाओं के अनुयायियों का वोट बैंक हासिल होता है। धर्म और राजनीति के नापाक गठजोड़ का यह नंगा नाच जिस बेशर्मी के साथ भाजपा के सत्ता में आने के बाद हो रहा है शायद ही पहले कभी हुआ हो।

भाजपाई नेताओं व मन्त्रियों द्वारा आसाराम, राम रहीम से लेकर तमाम बाबाओं के मंचों पर जाकर नतमस्तक होना और नंगनाच करना कोई नयी परिघटना नहीं है और ना ही किसी से छुपी है। अटल बिहारी वाजपेयी के आसाराम के साथ किये गये नाच को, और मोदी द्वारा आसाराम बापू के साथ किये गये भजनगायन को कौन भूल सकता है? बेशर्मी की इन्तेहाँ तब हो जाती है जब भाजपा सरकार व भाजपाई नेता ऐसे सज़ा काट रहे अपराधी, बलात्कारी बाबाओं के बार-बार जेल से बाहर आने की योजनाबद्ध रूपरेखा तैयार करते हैं और फिर इनके मंचों पर जाकर नतमस्तक होकर वोटों की भीख माँगते हैं।

इससे एक बात और साबित होती है और न्यायपालिका पर भी कुछ गम्भीर सवाल उठते हैं। एक तरफ़ देश की जेल में राजनीतिक कैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, एक पैरोल की बात तो दूर उन्हें रहने-खाने बुनियादी सुविधाओं से भी महरूम रखा जाता है, दूसरी तरफ़ बलात्कारी बाबाओं को पैरोल पर पैरोल मिली जाती है। जनता के हक़ की बात करने वाले तमाम बुद्धजीवी और राजनीतिक कार्यकर्ताओं को बिना चार्ज़शीट के भी सालों साल जेल में रखा जाता है और बीमार पड़ने पर भी बेल नहीं दी जाती। स्टेन स्वामी को आप भूले नहीं होंगे, जिन्हें झूठा आरोप लगा कर यू.ए.पी.ए लगा दिया गया था। जेल की बद्तर परिस्थितियों में रहने के कारण ही उनकी मौत हुई। वहीं राम रहीम जैसा बलात्कार व हत्या का आरोपी खुलेआम समाज में घूमकर भाजपा का प्रचार कर रहा है। सहज़ ही समझा जा सकता है कि फ़ासीवादी हिन्दुत्ववादी भाजपा का 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का नारा महज़ एक ढकोसला है, बल्कि इनका असली नारा है 'बलात्कारियों के सम्मान में भाजपा मैदान में'।

भगतसिंह ने कहा था कि धर्म हर व्यक्ति का निजी मसला होना चाहिए व सार्वजनिक जीवन तथा राजनीति से अलग होना चाहिए। आज धर्म व राजनीति मिलकर इस देश की अवाम की किस्मत तय कर रहे हैं तथा उन्हें नफ़रत के कुएँ में धकेल रहे हैं। धर्म और राजनीति के मिश्रण को हम मेहनतकशों को सिरे से नकारना होगा। साथ ही, हमें तर्क और विज्ञान के साथ खड़ा होना होगा, जो कि स्वयं मेहनतकश वर्गों के श्रम के अनुभवों से ही पैदा होते हैं। हमें अन्धविश्वास और ढकोसलों को छोड़कर ऐसे बाबाओं को उनकी सही जगह पहुँचाना होगा। इसके लिए आज एक कदम भाजपा की साम्प्रदायिक राजनीति को नकारना भी है। कोई आपके धर्म का है, इसका यह अर्थ नहीं कि उसके हित आपसे मिलते हैं। एक हिन्दू पूँजीपति का एक हिन्दू मज़दूर के साथ क्या साझा है? वास्तव में, एक हिन्दू पूँजीपति का एक मुसलमान पूँजीपति से कहीं ज़्यादा साझा है, क्योंकि उनके जमाती हित एक हैं। उसी प्रकार, एक हिन्दू मज़दूर का साझा एक मुसलमान मज़दूर, एक सिख या ईसाई मज़दूर से कहीं ज़्यादा है, क्योंकि उनके जमाती हित और हक़ एक हैं। इसीलिए शहीदे-आज़म भगतसिंह ने कहा था कि हम धार्मिक आस्था के मामले में अलग हो सकते हैं, फिर भी हमारी लड़ाई और हमारा मक़सद एक हो सकता है, हमारी राजनीति एक हो सकती है और होनी ही चाहिए, अगर हमारा वर्ग समान है।

राजेन्द्र धोड़पकर के तीन कार्टून (इंटरनेट से साभार)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 18

अध्याय-15

पूँजी का संचय

(पिछले अंक से जारी)

● अभिनव

बेशी- मूल्य का पूँजीकरण, पूँजी का संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन

साधारण पुनरुत्पादन पूँजीवाद का आम नियम नहीं होता है। पूँजीवाद का आम नियम होता है विस्तारित पुनरुत्पादन। हमने देखा कि साधारण पुनरुत्पादन की सूरत में पूँजीपति समूचे बेशी मूल्य का व्यक्तिगत उपभोग कर लेता है। यानी, वह पूरा का पूरा उसकी आमदनी (revenue) में तब्दील हो जाता है और उसके किसी भी हिस्से को पूँजीपति वापस उत्पादन में नहीं लगाता, यानी फिर से उसका उत्पादक निवेश नहीं करता है। लेकिन पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में यह केवल अपवादस्वरूप ही होता है। पूँजीवादी व्यवस्था का आम नियम है *बेशी मूल्य के एक हिस्से का पूँजी में तब्दील किया जाना*, *पूँजी का संचय* किया जाना और उसे वापस निवेश करके उत्पादन को पहले से बड़े पैमाने पर करना, यानी *विस्तारित पुनरुत्पादन* करना। वजह यह है कि पूँजीपति का लक्ष्य पैसे से पैसा बनाना होता है, मुनाफ़े से और अधिक मुनाफ़ा बनाना होता है। उसकी यह अन्धी हवस कभी नहीं मिटती।

इससे पहले की उत्पादन व्यवस्थाओं में शासक वर्गों, यानी उत्पादन के साधन के स्वामी वर्ग का आम तौर पर यह लक्ष्य नहीं होता था। उसका लक्ष्य होता था अधिक से अधिक उपभोग, ऐशो-आराम, शान और ऐय्याशी। लेकिन पूँजीपति वर्ग अपने पहले के शासक वर्गों से इस मायने में भिन्न है। ऐसा नहीं है कि उसके उपभोग और ऐशो-आराम में पहले के शासक वर्गों के मुकाबले कोई कमी आयी है। लेकिन यह उसके द्वारा मुनाफ़े से मुनाफ़ा बनाने की प्रक्रिया का उपजात है, या उसके साथ स्वत: होने वाली प्रक्रिया है। साथ ही, पूँजीपति के पास और कोई चारा भी नहीं होता है। वजह यह है कि अगर वह पूँजी संचय नहीं करेगा, उत्पादन के पैमाने का विकास नहीं करेगा, नयी तकनोलॉजी में निवेश करके श्रम की उत्पादकता को नहीं बढ़ायेगा, तो अन्य पूँजीपतियों से प्रतिस्पर्द्धा में वह पिछड़ जायेगा और कालान्तर में तबाह हो जायेगा। यह प्रतिस्पर्द्धा होती है अपने माल को कम-से-कम कीमत पर बेचने की। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि पूँजीपति प्रति इकाई लागत को कम कर सके। उत्पादन की लागत को कम तभी किया जा सकता है, जबकि श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया जाय व उत्पादन के पैमाने को विस्तारित किया जाय। इसलिए पूँजीपति सतत् प्रयासरत रहता है कि वह बेशी मूल्य की अधिकतम सम्भव मात्रा को पूँजी में तब्दील करे, यानी पूँजी का संचय करे और उसका निवेश कर उत्पादन को विस्तारित पैमाने पर शुरू करे। यही पूँजीवाद की आम प्रवृत्ति होती है।

इसलिए मार्क्स कहते हैं कि पहले हमने यह देखा कि पूँजी से बेशी मूल्य पैदा होता है और अब हम देखेंगे कि बेशी मूल्य से पूँजी कैसे पैदा होती है। बेशी मूल्य का पूँजी में तब्दील किया जाना, यानी उसे फिर से उत्पादन में लगाया जाना, **पूँजी का संचय** कहलाता है। पूँजी के संचय का अर्थ यह है कि अब समूचे बेशी मूल्य का पूँजीपति द्वारा व्यक्तिगत उपभोग नहीं किया जा रहा है, बल्कि वह आय (revenue) और पूँजी (capital) में बँट रहा है। यानी उसके एक हिस्से को पूँजी में तब्दील किया जा रहा है।

मान लें, एक पूँजीपति रु. 2000 का उत्पादन में निवेश करता है। ज़ाहिर है, इसका एक हिस्सा उत्पादन के साधनों, यानी मशीनों, कच्चे माल, आदि पर लगेगा, जबकि दूसरा हिस्सा मज़दूरों को काम पर रखने, यानी श्रमशक्ति ख़रीदने पर लगेगा। मान लेते हैं कि पूँजीपति ने रु. 1600 उत्पादन के साधनों को ख़रीदने पर ख़र्च किये, जबकि रु. 400 उसने श्रमशक्ति ख़रीदने पर ख़र्च किये। यानी उसकी रु. 2000 की पूँजी में से रु. 1600 स्थिर पूँजी है, जबकि रु. 400 परिवर्तनशील पूँजी है। मान लेते हैं कि बेशी मूल्य की दर 100 प्रतिशत है। लिहाज़ा, रु. 400 की परिवर्तनशील पूँजी रु. 400 के बराबर बेशी मूल्य पैदा करती है। जब उत्पादन हो जाता है, तो यह बेशी मूल्य पूँजीपति के पास अभी मुद्रा-रूप में नहीं मौजूद होता है, बल्कि माल-रूप में यानी बेशी उत्पाद (surplus product) के रूप में मौजूद होता है। निश्चय ही, वह अपने बेशी मूल्य के किसी भी हिस्से को पूँजी में तभी तब्दील कर सकता है, जब बेशी उत्पाद बिके और वह उसके पास मुद्रा-रूप में वापस आये। अभी हम मान लेते हैं कि वह अपना माल उसके मूल्य पर बेचने में सफल होता है। ऐसे में, उसके पास रु. 2400 वापस आयेंगे। यानी, रु. 2000 का मूल निवेश और रु. 400 का बेशी मूल्य। अगर वह पूरे रु. 400 अपने खाने-पीने, ऐशो-आराम और ऐय्याशी पर ख़र्च कर देता है, तो उसे हम साधारण पुनरुत्पादन कहेंगे क्योंकि इस मामले में पुनरुत्पादन पहले के समान उसी स्तर पर होगा। लेकिन पूँजी संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन के मामले में ऐसा नहीं होता। मसलन, इस सूरत में ऐसा होगा कि पूँजीपति रु. 200 अपने उपभोग पर ख़र्च करेगा, लेकिन बाकी बेशी मूल्य को वापस पूँजी में तब्दील करेगा और उसे फिर से उत्पादन में लगायेगा। यानी अगले चक्र में वह रु. 2000 लगाने के बजाय रु. 2200 उत्पादन में निवेश करेगा।

अगर वह पहले के ही समान अपनी पूँजी को 8:2 के अनुपात में स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी में तब्दील करता है, तो इसका अर्थ होगा कि अब रु. 200 का पूँजीकृत बेशी मूल्य (capitalized surplus value) भी उसी अनुपात में स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी में विभाजित होगा। यानी, रु. 160 स्थिर पूँजी और रु. 40 परिवर्तनशील पूँजी। यानी, अगले चक्र में जो रु. 2200 उत्पादन में लगाये जायेंगे उसमें से रु. 1760 स्थिर पूँजी के रूप में उत्पादन के साधनों को ख़रीदने पर ख़र्च होंगे, जबकि रु. 440 परिवर्तनशील पूँजी के रूप में श्रमशक्ति को ख़रीदने के लिए लगाये जायेंगे। जब पूँजीकृत बेशी मूल्य उसी अनुपात में स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी में विभाजित होता है, जिस अनुपात में मूल पूँजी स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी में विभाजित होती है, तो उसे साधारण संचय (simple accumulation) कहा जाता है। यानी पूँजी संचय हो रहा है, लेकिन वह साधारण चरित्र का है, जिसमें कि पूँजी का आवयविक संघटन (organic composition of capital) यानी कि स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी के अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। यानी, उसी पैमाने पर संचय हो रहा है। अगर हमारे उदाहरण में यह प्रक्रिया इसी रूप में जारी रहती है, तो रु. 2200 निवेश करने पर पूँजीपति को बेशी मूल्य की दर समान रहने पर रु. 440 बेशी मूल्य के रूप में प्राप्त होंगे, यानी अपना माल पूरा बेचने पर उसे कुल रु. 2640 प्राप्त होंगे। उसी दर से संचय करने पर, यानी बेशी मूल्य को आमदनी व पूँजी में उसी अनुपात में बाँटने की सूरत में, अगली दफ़ा वह फिर से रु. 220, यानी आधे बेशी मूल्य को अपने व्यक्तिगत उपभोग करेगा और रु. 220 का संचय करेगा। इस सूरत में वह तीसरे चक्र में रु. 2420 का निवेश करेगा। दूसरे शब्दों में, साधारण पूँजी संचय की यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रह सकती है।

हम साधारण पुनरुत्पादन के मामले में ही देख चुके हैं कि यदि पूँजीपति समूचे बेशी मूल्य का व्यक्तिगत उपभोग कर लेता है, तो भी कुछ उत्पादन चक्रों के बाद उसकी समूची पूँजी वास्तव में मज़दूरों के बेगार श्रम से पैदा हुई बन चुकी होती है, यानी बेशी श्रम से, जिसके बदले में पूँजीपति मज़दूर को कुछ नहीं देता। विस्तारित पुनरुत्पादन के मामले में यह बात और भी ज़्यादा लागू होती है। हमारे उदाहरण के अनुसार, यदि पूँजीपति यह दावा करे कि उसके पास जो शुरुआती रु. 2000 थे, वह उसके और उसके पूर्वजों के व्यक्तिगत श्रम से एकत्र हुए थे (हालाँकि समूचे पूँजीपति वर्ग की बात करें, तो ऐसा अपवादों को छोड़कर कभी नही होता और पूँजीपतियों के बहुलाँश के पास आरम्भिक पूँजी उत्पादकों को उत्पादन के साधनों से अलग करके, लूटपाट के ज़रिये ही आती है) और हम इस दावे को फिलहाल मान भी लें तो भी जो रु. 400 बेशी मूल्य में पैदा हुए और उसके बाद इस बेशी मूल्य के पूँजीकृत होकर निवेश होने के कारण जो बेशी मूल्य पैदा हुआ, वह पूर्ण रूप से मज़दूर वर्ग के उस श्रम का नतीजा है, जिसके बदले में पूँजीपति ने मज़दूरों को कोई भी मेहनताना नहीं दिया। कुछ ही समय बाद पूँजीपति के पास अपने पूर्वजों की मेहनत के फल का (अगर वास्तव में ऐसा है तो भी!) एक कण भी नहीं बचा होता है और उसकी समूची पूँजी मज़दूरों के उस श्रम का नतीजा भर होती है, जिसके लिए मज़दूरों को कोई भुगतान नहीं किया गया है। *मज़दूर वर्ग तार्किक तौर पर पूरे वैधीकरण के साथ हर चीज़ पर अपना क़ब्ज़ा स्थापित कर सकता है।*

मार्क्स याद दिलाते हैं कि पूँजी संचय की दो पूर्वशर्तें होती हैं। यह जो रु. 200 के बराबर बेशी मूल्य पूँजी में तब्दील किया जा रहा है, वह अपने मुद्रा-रूप में ही उत्पादन में तो जा नहीं सकता है। इस रु. 200 से उत्पादन के साधन व श्रमशक्ति का ख़रीदा जाना अनिवार्य है। केवल तभी विस्तारित पैमाने पर उत्पादन हो सकता है। श्रमशक्ति को ख़रीदने के लिए जो अतिरिक्त पूँजी लगायी जाती है और उससे अतिरिक्त मज़दूर आते हैं, वे इस परिवर्तनशील पूँजी से, जो कि उनके हाथ में *मज़दूरी* है, उनकी *आय* है, अपने उपभोग की वस्तुएँ ख़रीदते हैं। यानी, जब समूचे पूँजीवादी समाज के पैमाने पर पूँजी का संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन पूँजीपति वर्ग द्वारा किया जाता है, तो यह तभी सम्भव है, जब न सिर्फ पिछले उत्पादन चक्र में ख़र्च हुए उत्पादन व उपभोग के साधनों की भरपाई हो, बल्कि अतिरिक्त उत्पादन व उपभोग के साधन तथा अतिरिक्त श्रमशक्ति की आपूर्ति समाज में भी मौजूद हो। मार्क्स बताते हैं कि अराजकतापूर्ण तरीके से ही सही पर आम तौर पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी नैसर्गिक गति से इन दोनों ही शर्तों को पूरा करती है। एक ओर वह बेरोज़गारों की एक रिज़र्व आर्मी को निरन्तर पैदा करती रहती है और उसे क़ायम रखती है, वहीं दूसरी ओर वह विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक भौतिक तत्वों, यानी अतिरिक्त उत्पादन के साधनों व उपभोग के साधनों को भी पैदा करती है। वजह यह कि जो अतिरिक्त या बेशी उत्पाद बेशी मूल्य में तब्दील होता है, वह केवल पूँजीपतियों के व्यक्तिगत उपभोग व उत्पादक उपभोग के सामानों के रूप में ही नहीं होता, बल्कि वह मज़दूरी-उत्पादों के रूप में भी होता है। *यानी*, *शुद्ध उत्पाद* (net product) *केवल पूँजीपतियों के ऐशो-आराम के सामानों व उत्पादन के साधनों के रूप में ही अस्तित्वमान नहीं होता है*, *बल्कि उसमें मज़दूरी-उत्पाद*, *यानी मज़दूरों के उपभोग के साधन भी शामिल होते हैं।* विस्तारित पुनरुत्पादन की पूर्वशर्तें पूँजीवादी व्यवस्था अपनी नैसर्गिक गति से ही पूरी करती है। मार्क्स लिखते हैं:

> "संचय के लिए यह आवश्यक होता है कि बेशी उत्पाद का एक हिस्सा पूँजी में तब्दील हो। लेकिन चमत्कार को छोड़ दें, तो हम उन वस्तुओं के अलावा किसी अन्य चीज़ को पूँजी में तब्दील नहीं कर सकते, जो या तो श्रम प्रक्रिया में लगायी जा सकती हों (यानी कि उत्पादन के साधन), या जो मज़दूर की आजीविका के लिए उपयुक्त हों (यानी, जीविका के साधन)। नतीजतन, वार्षिक बेशी श्रम के एक हिस्से को अनिवार्यत: अतिरिक्त उत्पादन व उपभोग के साधनों के उत्पादन में लगाया जाता है, जो कि इन चीज़ों की

(पेज 13 पर जारी)

पूँजी का संचय

(पेज 12 से आगे)

उस मात्रा के अतिरिक्त हो, जो मूलत: लगायी गयी पूँजी की भरपाई करने के लिए आवश्यक होती हैं। एक शब्द में कहें, तो बेशी मूल्य को पूँजी में सिर्फ इसीलिए तब्दील किया जा सकता है, क्योंकि बेशी उत्पाद में, जिसका मूल्य वह है, पहले से ही पूँजी की नयी मात्रा के भौतिक तत्व शामिल हैं।" (कार्ल मार्क्स. 1990. *पूँजी, खण्ड-1*, पेंगुइन बुक्स, लन्दन, पृ. 726-727)

जब पूँजी का संचय साधारण संचय के रूप में हो रहा हो, जिसमें कि स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी का अनुपात, यानी कि पूँजी का आवयविक संघटन समान ही रहता है, तो वह श्रमशक्ति की माँग में उसी दर से वृद्धि करता है, जिस दर से पूँजी का संचय व विस्तारित पुनरुत्पादन हो रहा होता है। यह समझना आसान है। यदि पूँजी में तब्दील होने वाला बेशी मूल्य उसी अनुपात में स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी में तब्दील हो रहा है, जिसमें कि मूल पूँजी में वह विभाजित था, तो यह श्रमशक्ति की माँग में उसी दर से वृद्धि करेगा, जिस दर पूँजी बढ़ रही है। यानी, यह रोज़गार की दर को बढ़ायेगा और मज़दूरों की सक्रिय सेना (active army of labour) में निरपेक्ष बढ़ोत्तरी होगी और साथ ही सापेक्ष तौर पर भी उसमें बढ़ोत्तरी होगी। *हम आगे देखेंगे कि पूँजीवादी व्यवस्था की आन्तरिक गतिकी यह सुनिश्चित करती है कि पूँजी का संचय उसी पैमाने पर जारी नहीं रहता, बल्कि बढ़े हुए पैमाने पर, प्रगतिशील संचय के रूप में होता है।* यानी, संचित पूँजी में स्थिर पूँजी का हिस्सा परिवर्तनशील पूँजी के हिस्से के सापेक्ष बढ़ता जाता है। ऐसे में यह बिल्कुल मुमकिन है कि निरपेक्ष तौर पर परिवर्तनशील पूँजी की राशि भी बढ़े। लेकिन कुल पूँजी में स्थिर पूँजी की तुलना में उसका सापेक्षिक हिस्सा घटता जाता है। लेकिन उस पर हम बाद में आयेंगे।

पहले हम यह समझते हैं कि किस प्रकार शुरुआती पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों, जैसे कि एडम स्मिथ व डेविड रिकार्डो तक ने, अपनी वैज्ञानिक खोजों व उपलब्धियों के बावजूद, पूँजी के संचय की प्रवृत्ति के बारे में क्या ग़लत नतीजे निकाले और किस प्रकार वे नतीजे वस्तुगत तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था के पक्ष में क्षमायाचना में तब्दील हो गये।

पूँजीवाद के पक्षपोषण के लिए पूँजीवादी क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र का पहला तर्क: 'पूँजी संचय मज़दूरों के लिए फ़ायदेमन्द है'

क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने यह दावा किया कि पूँजीपति बेशी मूल्य को पूँजी में तब्दील कर जो पूँजी संचय करता है, वह तो वास्तव में मज़दूर वर्ग को ही फ़ायदा पहुँचाता है। उनका कहना था कि जो भी पूँजी संचय होता है, वह *अन्तत:* मज़दूरी में ही तब्दील होता है। एडम स्मिथ ने इस भ्रम की शुरुआत की। उनके भ्रम के दो बुनियादी कारण थे। पहला यह कि जो अचल पूँजी होती है, यानी कि मशीनें, इमारतें, आदि जो उत्पादन के एक ही चक्र में ख़र्च नहीं हो जातीं, एक ही बार में अपना मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं करती, और उत्पादन के कई चरणों के दौरान काम करती रहती हैं, एडम स्मिथ के अनुसार, वे अपना मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित ही नहीं करती। यानी, स्मिथ का मानना था कि अचल पूँजी के ये तत्व मानो मुफ्त में पूँजीपति को अपनी सेवा देते रहते हैं। हम जानते हैं कि ऐसा नहीं होता और अचल पूँजी का हर तत्व अलग-अलग समय के लिए ही उत्पादन में लग सकता है, उन सबकी एक उम्र होती है और उनकी उम्र और उनके मूल्य के अनुसार ही हर उत्पादन चक्र में उनके मूल्य का एक निश्चित हिस्सा मज़दूर की मेहनत के ज़रिये उत्पाद में स्थानान्तरित हो जाता है।

स्मिथ का दूसरा भ्रम यहाँ से पैदा होता है कि वह स्थिर पूँजी के तत्वों की हर ख़रीद को पहले स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी में तोड़ते हैं, फिर इस दूसरी स्थिर पूँजी के तत्व की ख़रीद को दोबारा स्थिर पूँजी और परिवर्तनशील पूँजी में तोड़ते हैं, और यह प्रक्रिया तब तक चलाते हैं जब तक कि उसे पूरी तरह से मज़दूरी में और प्राकृतिक संसाधनों में समाधित न कर दें। यानी, वह कहते हैं कि हर उत्पादन का साधन भी कुछ उत्पादन के साधनों व श्रम से पैदा होता है, ये दूसरे उत्पादन का साधन भी कुछ अन्य उत्पादन के साधनों व श्रम से पैदा होता है और यदि हम इस प्रकार जड़ तक जाएँ तो हमें केवल प्रकृति और श्रम मिलेगा और इसी तरह से समूची संचित पूँजी को हम मज़दूरी में तोड़ सकते हैं। स्मिथ यहाँ दो चीज़ों में भ्रमित होते हैं: पहला, वे यह नहीं समझते कि अपने इस तर्क के ज़रिये वह इससे ज़्यादा कुछ नहीं कह रहे हैं कि समस्त समृद्धि, यानी समस्त उपयोग-मूल्यों के केवल दो ही स्रोत हो सकते हैं: श्रम और प्रकृति; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि पूँजीवादी उत्पादन के हर चक्र में हमें समूचे उत्पाद को उत्पादन के साधनों और उपभोग के साधनों में विभाजित नहीं करना होगा। इसके बिना हमारा विश्लेषण किसी नतीजे पर पहुँचेगा ही नहीं। दूसरी बात, जो स्मिथ नहीं समझ पाये, वह यह कि इस प्रकार समूची पूँजी को मज़दूरी में विसर्जित नहीं किया जा सकता है क्योंकि हर चरण में एक व्यक्ति की पूँजी दूसरे व्यक्ति की आय होती है। मसलन, परिवर्तनशील पूँजी पूँजीपति के हाथ में पूँजी ही होती है लेकिन जब मज़दूरी के रूप में उसका भुगतान कर दिया जाता है, तो वह मज़दूर की आय/आमदनी (revenue) होती है। उसी प्रकार एक लग्ज़री उत्पाद के उत्पादन में निवेश करने वाले पूँजीपति के लिए उसका माल और कुछ नहीं बल्कि उसकी माल-पूँजी है, लेकिन जो पूँजीपति उसे ख़रीदता है, उसके लिए वह उपभोग का साधन है, जबकि उसने जिस धनराशि, यानी अपनी आमदनी (revenue) के एक हिस्से से उसे ख़रीदा, वह लक्ज़री उत्पादन वाले पूँजीपति के हाथ में पूँजी है। यानी, एक व्यक्ति की आमदनी दूसरे व्यक्ति की पूँजी हो सकती है और इसका उल्टा भी हो सकता है। संचित पूँजी का एक हिस्सा मज़दूरी में, यानी आय में तब्दील होकर उपभोग की सामग्रियों में बदलता है, जबकि उसका बाकी हिस्सा यानी स्थिर पूँजी में तब्दील होने वाला हिस्सा उत्पादन के साधनों में तब्दील होता है। उसी प्रकार, बेशी मूल्य का वह हिस्सा जो पूँजीपति अपने व्यक्तिगत उपभोग के लिए रखता है, यानी पूँजीपति की अपनी आमदनी (revenue) या उपभोग-निधि, उपभोग के उत्पादों में तब्दील होती है। *उत्पादन के हर चरण में आय और पूँजी को, उपभोग के साधनों व उत्पादन के साधनों को, स्थानापन्न उत्पाद व शुद्ध उत्पाद को अलग करना अनिवार्य है।* इसके बिना मार्क्स के शब्दों में आपका विश्लेषण "मारा-मारा फिरता रहेगा"। मार्क्स लिखते हैं:

"संचय को बेशी उत्पाद के उत्पादक मज़दूरों द्वारा उपभोग मात्र बनाकर पेश किये जाने को एडम स्मिथ ने एक चलन बना दिया है। ऐसा कहने का पर्याय यह होगा कि बेशी मूल्य के पूँजीकरण का अर्थ महज़ समूचे बेशी मूल्य को श्रमशक्ति में तब्दील करना है। इस बिन्दु पर रिकार्डो की सुनें: 'यह समझना अनिवार्य है कि किसी देश के सभी उत्पादनों का उपभोग होता है; लेकिन इस तथ्य से अधिकतम अन्तर पड़ जाता है जिसकी आप कल्पना कर सकते हैं, कि उनका उपभोग उनके द्वारा किया जा रहा है जो किसी नये मूल्य का पुनरुत्पादन करते हैं, या उनके द्वारा किया जा रहा है जो कोई पुनरुत्पादन नहीं करते। जब हम कहते हैं कि आय की बचत की गयी है, और उसे पूँजी में जोड़ा गया है तो हमारा मतलब यह होता है कि आय के उस हिस्से का, जिसे पूँजी में जोड़ा गया है, उपभोग उत्पादक मज़दूरों द्वारा किया जा रहा है, न कि अनुत्पादक मज़दूरों द्वारा। यह कल्पना करने से बड़ी और कोई ग़लती नहीं है कि पूँजी उपभोग न करने से बढ़ती है। 'लेकिन इससे बड़ी कोई ग़लती नहीं हो सकती जिसे एडम स्मिथ के बाद रिकार्डो और उनके बाद आने वाले सभी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा दुहराया गया, यानी यह विचार कि 'आय का वह हिस्सा जो पूँजी में जोड़ा गया है, उसका उपभोग उत्पादक मज़दूरों द्वारा किया जाता है। 'इसके अनुसार, समूचा बेशी मूल्य जिसे पूँजी में तब्दील किया जाता है, वह परिवर्तनशील पूँजी में बदल जाता है। लेकिन, वास्तविक तथ्य यह है कि बेशी मूल्य, मूलत: निवेश किये गये मूल्य के ही समान, स्थिर और परिवर्तनशील पूँजी में, उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति में तब्दील होता है।" (*वही*, पृ. 736)

मार्क्स इस भ्रम के मूल को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:

"इस निहायत ही अनर्गल विश्लेषण के अन्त में, एडम स्मिथ, इस बेतुके नतीजे पर पहुँचते हैं कि हालाँकि हर पूँजी को स्थिर और परिवर्तनशील पूँजी में विभाजित किया जाता है, समाज की पूँजी को पूर्ण रूप से परिवर्तनशील पूँजी में विभक्त किया जा सकता है, यानी उसे पूरी तरह से मज़दूरी के भुगतान में लगाया जाता है... स्पष्ट है कि इस दलील का पूरा ज़ोर 'और इसी प्रकार से' में है, जो हमारे विश्लेषण को मारा-मारा फिरने पर मजबूर कर देता है। दरअसल, एडम स्मिथ वहीं अपना विश्लेषण रोक देते हैं, जहाँ से जटिलताएँ शुरू होती हैं।

"जब तक हम साल भर के उत्पादन के कुल योग भर को देखते हैं, तो पुनरुत्पादन की वार्षिक प्रक्रिया को आसानी से समझा जा सकता है। लेकिन इस वार्षिक उत्पाद के हर तत्व को बाज़ार में एक माल के रूप में ख़रीदा जाना होता है, और वहीं पर दिक़्क़तें शुरू हो जाती हैं। अलग-अलग पूँजियों और व्यक्तिगत आमदिनयों की गतियाँ एक दूसरे को काटती हैं, आपस में मिलती हैं, और अवस्थितियों की सामान्य रूप में हो रही अदला-बदली में खो जाती हैं, यानी कि समाज की समृद्धि के संचरण की समूची प्रक्रिया में खो जाती हैं। यह देखने वाले को भ्रमित कर देता है और उसकी जाँच को हल करने के लिए कुछ बेहद जटिल समस्याएँ दे देता है।" (*वही*, पृ. 737)

मार्क्स इसके आगे बताते हैं कि आय और पूँजी की अदला-बदली, उनके उपभोग के साधनों व उत्पादन के साधनों के साथ विनिमय, स्थानापन्न उत्पाद व शुद्ध उत्पाद के संचरण की समस्याओं का समाधान वह 'पूँजी' के दूसरे खण्ड में करते हैं जहाँ वे समूचे समाज के स्तर पर संचरण की प्रक्रिया (process of circulation) का अध्ययन करते हैं। अभी इतना समझ लेना पर्याप्त है कि एडम स्मिथ व डेविड रिकार्डो का यह नतीजा कि समूची पूँजी अन्तत: मज़दूरी में विभक्त हो जाती है, मूलत: आय व पूँजी के संचरण व उनके उपभोग के साधनों व उत्पादन के साधनों में तब्दील होने की प्रकिया को नहीं समझता, न ही यह उत्पादन सम्बन्धों की समस्या को समझता है। यह सिर्फ़ एक स्थापित तथ्य का दुहरावपूर्ण तरीके से फिर से दुहराव कर देता है, यानी यह कि समस्त समृद्धि का स्रोत केवल श्रम और प्रकृति है। हालाँकि *इस तथ्य को भी*, कि समस्त समृद्धि का स्रोत श्रम और प्रकृति हैं, मार्क्स ने ही उद्घाटित किया क्योंकि उपयोग मूल्य व मूल्य के बीच के भ्रम के कारण एडम स्मिथ ने तो समूची समृद्धि को श्रम की रचना बता दिया था, जबकि मार्क्स ने बताया कि *समस्त मूल्य केवल श्रम से ही पैदा होता है, लेकिन समस्त समृद्धि के दो स्रोत हैं: प्रकृति और श्रम।*

बहरहाल, हम देख सकते हैं कि यह तर्क कि समूची पूँजी व उसके संचय को अन्तत: मज़दूरी में विभक्त किया जा सकता है, किस प्रकार से पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। इसके अनुसार, मज़दूर वर्ग का हित भी पूँजीपति द्वारा अधिकतम बेशी मूल्य निचोड़े जाने और उसके अधिकतम सम्भव हिस्से के पूँजी में तब्दील किये जाने में है। क्योंकि समूचे पूँजीकृत बेशी मूल्य को तो अन्तत: मज़दूरी में ही विभक्त हो जाता है। माने कि अधिकतम बेशी मूल्य का निचोड़ा जाना और उसके अधिक से अधिक बड़े हिस्से का पूँजी में तब्दील किया जाना श्रम की माँग को बढ़ायेगा, मज़दूरी को बढ़ायेगा और चूँकि समस्त संचित पूँजी अन्तत: मज़दूरी में ही लगती है, इसलिए रोज़गार व औसत मज़दूरी दोनों को ही बढ़ायेगा। मार्क्स ने बताया कि यह बात न तो ऐतिहासिक तौर पर सही ठहरती है और न ही तार्किक तौर पर। पूँजीवाद के इतिहास का वास्तविक अनुभव बताता है कि संचित पूँजी का प्रगतिशील रूप से बड़ा हिस्सा स्थिर पूँजी में तब्दील होता है और यह बेरोज़गारों की रिज़र्व सेना को रोज़गारशुदा मज़दूरों की सक्रिय सेना के सापेक्ष बढ़ाता जाता है, चाहे निरपेक्ष रूप से श्रम की सक्रिय सेना बढ़ ही क्यों न रही हो। इसके बारे में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

(पेज 14 पर जारी)

पूँजी का संचय

(पेज 13 से आगे)

भोंड़े पूँजीवादी अर्थशास्त्र द्वारा पूँजीपति वर्ग के पक्षपोषण का तर्क: 'पूँजी संचय का कारण पूँजीपति का संयम है!'

पूँजी का संचय करने का अर्थ है कि पूँजीपति समूचा बेशी मूल्य अपने व्यक्तिगत उपभोग पर ख़र्च नहीं करता है, बल्कि उसका एक हिस्सा बचाता है और उसे वापस उत्पादन में लगाता है। ज़ाहिर है, वह कितनी पूँजी का संचय करेगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि वह कितना उपभोग करेगा। वह जितनी अधिक पूँजी संचित करेगा, उतना ही वह पूँजीपति की अपनी भूमिका का निर्वाह करेगा, जिसका सार है पैसे से अधिक पैसे बनाना और फिर अधिक पैसे से और अधिक पैसे बनाना। वास्तव में, उसकी ऐतिहासिक प्रासंगिकता ही पूँजी को अधिक से अधिक संचित करने में है। स्वयं पूँजीवाद की एक उत्पादन व्यवस्था के रूप में ऐतिहासिक प्रासंगिकता इसी से पैदा होती है। और जैसा कि हम जानते हैं, पूँजीपति पूँजी की सवारी नहीं करता है, बल्कि पूँजी पूँजीपति की सवारी करती है। इसलिए इस रूप में पूँजीपति और कुछ नहीं बल्कि व्यक्ति-रूप में पूँजी (capital personified) ही है। उसकी भूमिका ही है श्रमशक्ति का अधिकतम सम्भव बड़े पैमाने पर शोषण कर अधिक से अधिक बेशी मूल्य निचोड़ना और उस बेशी मूल्य के अधिकतम हिस्से को पूँजी में तब्दील करना। इसके लिए ही समूची मानव जाति को ही उत्पादन की ख़ातिर अधिक से अधिक उत्पादन करने के लिए बाध्य करता है। लेकिन इसी प्रक्रिया में पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था उत्पादक शक्तियों का विकास उस स्तर तक करती है, जो कि एक नयी, ज़्यादा उच्चतर सामाजिक व्यवस्था का आधार बनता है। लुब्बेलुआब यह कि पूँजीपति नामक व्यक्ति और पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था की ऐतिहासिक प्रासंगिकता ही पूँजी संचय में है। संचय की ख़ातिर संचय।

यह बचत करने की आदत उसे एक मध्यकालीन या प्राक्-पूँजीवादी दौर के कंजूस जैसा दिखा सकती है, लेकिन यह तुलना प्रतीति के स्तर पर ही समाप्त हो जाती है। कंजूस की बचत करने की प्रवृत्ति एक व्यक्ति के पागलपन की अभिव्यक्ति होती है। लेकिन पूँजीपति के मामले में यह एक समूची व्यवस्था द्वारा आरोपित प्रवृत्ति होती है। पूँजीपति यदि पूँजी संचय नहीं करेगा, श्रम की उत्पादकता को नहीं बढ़ायेगा, उत्पादन के स्तर को विस्तारित नहीं करेगा तो वह अपने माल के उत्पादन की लागत को भी कम नहीं कर पायेगा और वह पूँजीपतियों के बीच जारी प्रतिस्पर्द्धा में बरबाद हो जायेगा। यहाँ हम एक उत्पादन पद्धति की एक समूची सामाजिक प्रणाली को देख रहे हैं, जिसमें स्वयं एक व्यक्तिगत पूँजीपति भी एक दाँता-पेंच ही है। मार्क्स लिखते हैं :

> "पूँजी के व्यक्ति-रूप में ही पूँजीपति सम्माननीय है। यूँ देखें, तो वह एक कंजूस के समान ही आत्म-समृद्धि के प्रति एक असीमित प्रबल प्रेरणा रखता है। लेकिन एक कंजूस में जो चीज़ एक व्यक्ति के उन्माद के रूप में प्रकट होती है, वह एक पूँजीपति में एक सामाजिक तन्त्र का प्रभाव होता है, जिस तन्त्र में वह एक दाँता मात्र ही है।इसके अलावा, पूँजीवादी उत्पादन का विकास किसी भी औद्योगिक उपक्रम में लगायी गयी पूँजी की मात्रा को लगातार बढ़ाते जाने को अनिवार्य देती है, और प्रतिस्पर्द्धा हर पूँजीपति को पूँजीवादी उत्पादन के अन्तर्भूत नियमों के मातहत कर देता है, बाह्य और जबरन थोपे गये नियमों के रूप में। यह उसे मजबूर कर देता है कि वह अपनी पूँजी का विस्तार करता जाये, ताकि वह उसे बचा सके, और वह लगातार संचय के ज़रिये ही उसका विस्तार कर सकता है।" (*वही*, पृ. 739)

यही वजह है कि एक पूँजीपति के रूप में उसका व्यक्तिगत उपभोग एक घाटे या लूटपाट के रूप में प्रकट होता है क्योंकि पूँजीवादी समाज में वैयक्तिकता, स्वतन्त्रता, स्वायत्तता पूँजी के पास होती है, पूँजीपति के पास नहीं। एक पूँजीपति के रूप में वह केवल पूँजी का अहलकार है, उसका प्रतिनिधि है, उसका व्यक्ति-रूप है। यही वजह है कि बहीखातों में पूँजीपति के उपभोग को भी उधार पासे में या डेबिट पक्ष में लिखा जाता है! क्यों? क्योंकि यह पूँजी संचय से कटौती है। लेकिन पूँजीपति भी आखिर ठहरा इन्सान! तो उसके दिल में भी मज़दूरों के श्रम की लूट से जमा धन-दौलत से कुछ ऐय्याशी करने की उमंगें और तरंगें उठती हैं। नतीजतन, वह अपनी शान भी दिखाना चाहता है, उम्दा उपभोग की वस्तुओं का उपभोग करना चाहता है, यानी लग्ज़री के सामानों का। यह दुविधा उसके भीतर हमेशा निवास करती है: *'ज़्यादा खाऊँ या ज़्यादा बचाऊँ'*। मार्क्स लिखते हैं :

> "लेकिन मूल पाप हर जगह सक्रिय रहता है। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के साथ, संचय और समृद्धि की वृद्धि के साथ, पूँजीपति महज़ पूँजी का अवतरण मात्र नहीं रह जाता। वह अपने भीतर के आदम के प्रति एक मानवीय ऊष्मा महसूस करने लगता है, और उसकी शिक्षा धीरे-धीरे उसे अपने पुराने वैराग्य भाव पर मुस्कराना सिखाती है, मानो वह किसी पुराने ज़माने के कंजूस का पूर्वाग्रह हो। जहाँ क्लासिकी किस्म का पूँजीपति व्यक्तिगत उपभोग को अपने प्रकार्य के विरुद्ध एक पाप मानता है, संचय करने से 'परहेज़' मानता है, वहीं आधुनिकीकृत पूँजीपति संचय को आनन्द के 'त्याग' के रूप में देखने में सक्षम होता है। 'हाय, उसके दिल में बसती हैं दो आत्माएँ; और एक की दूसरे से नहीं बनती।'" (*वही*, पृ. 741, *आखिरी पंक्तियाँ जर्मन महाकवि गोयठे की कालजयी रचना 'फाउस्ट' से हैं, जिन्हें मार्क्स ने यहाँ उद्धृत किया है*)

मार्क्स बताते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था के प्रादुर्भाव के बाद के शुरुआती दौर में हर पूँजीपति 'कंजूसी' के उस दौर से गुज़रता है, जिसकी हमने ऊपर बात की है। वास्तव में, हर व्यक्तिगत पूँजीपति भी एक पूँजीपति के तौर पर अपने जीवन में शुरू में इस दौर से गुज़रता है। लेकिन जैसे-जैसे पूँजीवाद का उत्तरोत्तर विकास होता है, सामाजिक समृद्धि का अभूतपूर्व विस्तार होता है, उसके उत्तरोत्तर विकास की आवश्यकता के आधार पर एक ऋण व्यवस्था (credit system) पैदा होता है, वैसे-वैसे संचय के साथ उपभोग को बढ़ाना भी पूँजीपति वर्ग के लिए मुमकिन और वांछनीय हो जाता है। मार्क्स बताते हैं:

> "जब विकास की एक निश्चित अवस्था आ जाती है, तो अपव्यय का एक पारम्पारिक स्तर, जो कि समृद्धि की नुमाइश भी है, और इस प्रकार ऋण का एक स्रोत भी है, 'अभागे' पूँजीपति के लिए धन्धे की एक ज़रूरत भी बन जाता है। ऐशो-आराम पूँजी के दिखावे के ख़र्चों में शामिल हो जाता है। इसके अलावा, पूँजीपति कंजूस की तरह अमीर नहीं होता, यानी अपने व्यक्तिगत श्रम और सीमित उपभोग के अनुपात में, बल्कि वह उस दर से अमीर होता है जिस दर से वह दूसरों की श्रमशक्ति को निचोड़ता है, और मज़दूरों को जीवन के समस्त आनन्दों का त्याग करने के लिए बाध्य करता है। इस प्रकार, हालाँकि पूँजीपति द्वारा ख़र्च करना कभी भी एक दिखावटी सामन्ती महाप्रभु की शाहख़र्ची जैसा प्रामाणिक चरित्र नहीं अपनाता, बल्कि, उसके विपरीत, यह हमेशा पृष्ठभूमि में मँडरा रहे नीच किस्म के लोभ और बेचैन हिसाब-किताब से बाधित होता है, लेकिन फिर भी उसके संचय के साथ यह ख़र्च भी बढ़ता है, और यह संचय को अनिवार्यत: बाधित किये बिना बढ़ता है।" (*वही*, पृ. 741)

पूँजीपति वर्ग की इस बढ़ती ऐय्याशी को हम मज़दूर देखते ही हैं। हम यह भी देखते हैं कि जिस दर से हमारी मेहनत की लूट बढ़ती है, जिस दर से हम पूँजीपति के लिए ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा पैदा करते हैं, उसी दर से हमारे काम और जीवन के हालात नर्क जैसे होते जाते हैं। 'ज़्यादा खाऊँ या ज़्यादा बचाऊँ' की शाश्वत दुविधा के बावजूद, पूँजी का संचय भी लगातार बढ़ती दर से बढ़ता जाता है और पूँजीपति वर्ग की ऐय्याशी भी बढ़ती है। लेकिन यह बढ़ता उपभोग बढ़ते संचय का उपजात (by-product) है, न कि इसका उल्टा। पूँजीवाद का शाश्वत नारा तो यही है: 'संचय करो, संचय करो!' आनन्द और संचय के बीच के द्वन्द्व का माल्थस ने यह हल बताया था कि समाज में परजीवी वर्गों का बना रहना ज़रूरी है, मसलन, राजे-रजवाड़ों का और ज़मीन्दारों का; मज़दूर तो बेशी मूल्य पैदा करने का यन्त्र है, लेकिन पूँजीपति भी स्वयं पूँजी का संचय करने यानी उस बेशी मूल्य के बड़े से बड़े हिस्से को वापस पूँजी में तब्दील करने का यन्त्र मात्र ही है; वह अधिक उपभोग करेगा तो अधिक संचय कैसे करेगा और समाज की समृद्धि में अधिकतम सम्भव गति से बढ़ोत्तरी कैसे होगी! इसलिए इन परजीवी वर्गों का यह सामाजिक प्रकार्य है कि वे उपभोग करें, इससे आधिक्य का संकट नहीं पैदा होगा! लेकिन औद्योगिक पूँजीपतियों के प्रतिनिधि राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने इस 'अन्याय' पर बहुत शोर मचाया और कहा कि इस निठल्ले और ठलुआ परजीवी वर्गों को पालना पूँजीपतियों का काम नहीं! ऊपर से, उनकी वजह से संचय की दर भी कम होगी। लेकिन इन बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने मज़दूर के शोषण और उसके अतिरिक्त श्रम के बिना किसी भुगतान के हड़प लिये जाने पर कोई शोर नहीं मचाया क्योंकि उन्हें यह बिल्कुल न्यायसंगत लगा! उन्हें मज़दूर की मज़दूरी को एकदम उसके भौतिक पुनरुत्पादन की आवश्यकता तक घटा दिये जाने, यानी जीने की ख़ुराक तक घटा दिये जाने में कुछ भी अन्यायपूर्ण नज़र नहीं आया क्योंकि यह तो पूँजीपति का काम ही है कि वह मज़दूर को आलसी न होने दे, उसे मेहनती बनाये रखे!

मार्क्स इन दोहरे मापदण्डों की खूब खिल्ली उड़ाते हैं। वह यह भी बताते हैं कि भूस्वामी वर्ग और औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के बीच जो विवाद था, वह उस समय एकदम से शान्त पड़ गया जब फ्रांस में 1830 की जुलाई क्रान्ति का दौर आया या उसके ठीक बाद ल्योन में मज़दूरों ने विद्रोह का बिगुल फूँका। मज़दूर वर्ग के शोषण की आवश्यकता पर शासक वर्ग के ये दोनों ही धड़े एकजुट थे। इस तुलना आप आज हमारे देश में आज जारी धनी फार्मरों और औद्योगिक वित्तीय पूँजीपतियों के आपसी विवाद से भी कर सकते हैं, जो महज़ इस बात पर है कि मज़दूरों से निचोड़े गये बेशी मूल्य के बड़े हिस्से पर क़ब्ज़ा किसका हो। लेकिन खेतिहर सर्वहारा को श्रम कानूनों द्वारा प्रदत्त अधिकार न मिलें, इस पर दोनों एक हैं। औद्योगिक मज़दूरों को ठेकाकरण और कैजुअलीकरण से मुक्ति मिले, जो उनसे अधिक से अधिक बेशी मूल्य निचोड़ने के लिए अपनाये गये तरीके मात्र हैं, यह सवाल दोनों में से कोई नहीं उठाता।

मार्क्स बताते हैं कि 1830-40 के दशक के इस दौर के ठीक बाद ही भोंड़े बुर्जुआ अर्थशास्त्र का दौर शुरू होता है, जो उन वैज्ञानिक खोजों का भी परित्याग करना शुरू कर देता है, जो विलियम पेटी, फिजियोक्रैट अर्थशास्त्रियों, एडम स्मिथ व डेविड रिकार्डो जैसे क्लासिकी बुर्जुआ अर्थशास्त्र की परम्परा की उपलब्धियाँ थीं। इस भोंड़े बुर्जुआ अर्थशास्त्र के एक जाने-माने नाम थे नासाऊ सीनियर। इनका मानना था कि मज़दूर के पूरे कार्यदिवस का जो आखिरी घण्टा होता है, केवल वह उसी में पूँजीपति के लिए मुनाफ़ा पैदा करता है! हम मज़दूरी पर केन्द्रित अध्याय में देख चुके हैं कि ऐसा नहीं होता है। अगर कोई मज़दूर 4 घण्टे ही काम कर रहा है, और बेशी मूल्य की दर 100 प्रतिशत है, तो वह 2 घण्टे मुफ्त में पूँजीपति के लिए ही काम करता है। अगर वह 8 घण्टे काम करेगा, तो भी यही समीकरण लागू होगा। इसी अर्थशास्त्री ने दावा किया कि उसकी एक खोज यह है कि पूँजी की जगह हमें 'संयम' शब्द का इस्तेमाल करना चाहिए! उसकी पूँजी उसके संयम का ही तो परिणाम है! अगर मुनाफ़े को वह पूरा हजम नहीं कर जाता और कुछ बचा लेता है जिस अगली बार फिर निवेश करता है, तो यह संयम ही तो है! यह बेशी मूल्य कहाँ से आ रहा है, यह नासाऊ सीनियर के लिए कोई सवाल ही नहीं है! हम समझ सकते हैं कि पूँजीवाद के पक्षपोषण के लिए भोंड़ा बुर्जुआ अर्थशास्त्र मज़ाकिया दलील पेश कर रहा है, जिसका न तो कोई सिर है और न पैर। इसके बाद के दौर से समूचा बुर्जुआ अर्थशास्त्र पूँजी संचय की व्याख्या इस संयम के सिद्धान्त से करता है। आपको आज की अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में भी यह सिद्धान्त मिल जायेगा। इसके खण्डन में भी बहुत शब्द ख़र्च करने की आवश्यकता नहीं है। बेशी मूल्य का स्रोत मज़दूर का वह श्रम है, जिसके लिए उसे कोई मेहनताना नहीं मिलता, यानी मुफ्त में दिया गया अतिरिक्त श्रम। यही बेशी मूल्य पूँजी के रूप में संचित होता है। नतीजतन, उसका मूल भी श्रम ही है, न कि पूँजीपति का संयम। वैसे भी संयम की व्याख्या दोनों प्रकार से ही की जा सकती है। मसलन, उपभोग करना निवेश करने के मामले में संयम दिखाना है और निवेश करना उपभोग करने के मामले में संयम दिखाना है; बैठे रहना चलने के मामले में संयम दिखाना है और चलना बैठे रहने के मामले में संयम दिखाना है, इत्यादि। यह किसी चीज़ की व्याख्या नहीं करता और एक मूर्खतापूर्ण तर्क है, जो भोंड़े पूँजीवादी अर्थशास्त्र ने पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग के पक्षपोषण के लिए गढ़ा है।

(अगले अंक में अध्याय-15 जारी)

दो फ़िलिस्तीनी कविताएँ

रफ़ा के बच्चे

उनके लिए — जो अपना रास्ता
लाखों लोगों के ज़ख़्मों से होकर बनाते हैं
और वे टैंक बागों के गुलाबों को
कुचल देते हैं
उनके लिए — जो रातों को
घरों की खिड़कियाँ तोड़ते हैं
खेत और संग्रहालय जला देते हैं
और फिर इसकी ख़ुशी में गीत गाते हैं
उनके लिए — जो अपने क़दमों की आहट से
दुखी माताओं के केश काट देते हैं
अंगूर के खेतों को
तहस-नहस कर देते हैं
जो शहर के चौराहों पर
ख़ुशियों के बुलबुल को गोली मार देते हैं
और जिनके हवाई जहाज बचपन के सपनों को
बमों से उड़ा देते हैं
उनके लिए — जो इन्द्रधनुष तोड़ देते हैं

आज की रात
रफा के बच्चे
यह घोषणा करते हैं
कि हमने नहीं बुनी थी चादरें
सिर के बालों से
हमने नहीं थूका था
मारी गयी औरतों के चेहरे पर
उनके मुँह से नहीं उखाड़े थे सोने के दांत
तुम हमारी टॉफ़ी छीनकर
बमों के खोखे क्यों देते हो
क्यों तुम अरब के बच्चों को
यतीम बनाते हैं
और हम तुम्हें धन्यवाद दें
दुखों ने हमें बड़ा बना दिया है
हम लड़ेंगे

•

विजेता की संगीन पर सूर्य की किरणें
एक तिरस्कृत नंगी लाश थी
रक्ताक्त मौन
ख़ून से सने चेहरों के बीच
विद्वेष
प्रार्थना की माला
मिथकीय डीलडौल का
एक आक्रमणकारी चिल्लाता है
तुम नहीं बोलोगे?
ठीक है :
तुम्हारे ऊपर कर्फ़्यू लगाया जाता है...
अल्लादीन की आवाज़ बिखर जाती है
शिकार की चिड़ियों का जन्म होता है
मैंने सेना के वाहन पर पत्थर फेंके
पर्चे बांटे
इशारा किया
मैंने ब्रश और पड़ोस से कुर्सी लेकर
नारे लिखे
मैंने बच्चों को भी इकट्ठा किया
और हम लोगों ने क़सम खायी
शरणार्थियों के निर्वासन से
कि हम लड़ेंगे
जब तक विजेताओं की संगीनें
हमारी गली में चमकती रहेंगी
अल्लादीन दस साल से ज़्यादा नहीं था

•

अकासिया के पेड़ उजाड़ दिये गये
और रफा के दरवाज़े
दुखों से सील कर दिये गये
या लाख्स से
या कर्फ़्यू से
(उस लड़की को रोटी
और एक घायल आदमी के लिए
पट्टी लेनी थी जो आधी रात के बाद लौट रही थी,
उस लड़की को एक गली पार करनी थी
जिस पर नज़र रख रही थीं
अजनबियों की आँखें, तेज़ हवा और बन्दूक़ की नलियाँ)
अकासिया के पेड़ उजाड़ दिये गये
और एक घाव की तरह
रफा में एक घर का दरवाज़ा
किसी ने खोला

वह उछली
और जासमीन की झाड़ी की गोद में जा गिरी
एक बार आतंक के बीच
जा रही थी सावधानी से कि
खजूर के एक पेड़ ने
उसे बचाया था
हर क़दम पर, बस उछलो...
एक गश्ती दल
तेज़ रोशनी
खाँसी
— कौन हो तुम
रुको
...
पाँच बन्दूक़ें उस पर तन गयी थीं
पाँच बन्दूक़ें

सुबह
हमलावरों की अदालत बैठी
उन्होंने उसे पेश किया
अमीना
'अपराधी'
आठ साल की बच्ची

– समीह अल-कासिम

मेरे देश

मेरे देश
ओ मेरे देश!
तेरी पर्वत श्रृंखलाओं में
गरिमा और सौन्दर्य है
भव्यता और रमणीयता है
तेरे वातावरण में
जीवन और मुक्ति है
ख़ुशियाँ और आशाएँ हैं
क्या मैं तुझे देख पाऊँगा?
सुरक्षित और सुखी
मज़बूत और सम्मानित
क्या मैं तुझे देख पाऊँगा?
तेरी प्रतिष्ठा में
सितारों तक पहुँच रही तेरी प्रतिष्ठा में
मेरे देश
ओ मेरे देश

नौजवान थकेंगे नहीं
उनका लक्ष्य तेरी आज़ादी है
या फिर मौत
हम मौत का प्याला पी लेंगे
पर अपने दुश्मनों के ग़ुलाम नहीं बनेंगे
हम हमेशा के लिए
अपमान नहीं चाहते
और न अभावग्रस्त ज़िन्दगी
हम अपनी महानता
लौटायेंगे मेरे देश
ओ मेरे देश

क़लम और तलवार हमारी पहचान है
सिर्फ़ बहस नहीं
और न झगड़ा
हमारी गरिमा और परम्परा
और उसे बनाये रखने का कर्तव्य
हमें उद्वेलित करता है
हमारा सम्मान
एक सम्माननीय लक्ष्य है
एक उठा हुआ झण्डा
ओ मेरे देश
तेरी ख़ूबसूरती
तेरी प्रतिष्ठा के दौरान
दुश्मनों पर भारी है
मेरे देश
ओ मेरे देश

– इब्राहीम तुकन

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद की क्रान्तिकारी विरासत को आगे बढ़ाओ!

● विशाल

दोस्तो, इसी फ़रवरी महीने की 27 तारीख़ को सन 1931 में चन्द्रशेखर आज़ाद अंग्रेजों से लड़ते हुए शहीद हुए थे। उन्होंने शपथ ली थी कि वे जीते जी अंग्रेजों के हाथ नहीं आएँगे और हुआ भी यही कि वे अपनी आख़िरी साँस तक कभी पकड़े नहीं गये। इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में जब उन्हें चारों तरफ़ से अंग्रेज़ पुलिस के सिपाहियों ने घेर लिया तब वह क़रीब घण्टेभर उनसे लड़ते रहे और अन्त में जब गोलियाँ ख़त्म हो गयीं तो आख़िरी गोली से उन्होंने खुद को मार लिया और शहादत दी।

एक ऐसे दौर में जब क्रान्तिकारियों की विरासत को आम जन तक पहुँचने ही नहीं दिया जा रहा है, तो चन्द्रशेखर आज़ाद को याद करने का सही अर्थ यही होगा कि हम उनके जीवन, उनके संघर्ष और ख़ासकर उनके विचारों को आम लोगों तक लेकर जायें।

आज़ाद के जीवन के बारे में उनके साथी क्रान्तिकारी भगवान दास माहौर 'यश की धरोहर' में लिखते हैं कि "आज़ाद का जन्म हद दर्जे की ग़रीबी में हुआ था। वे किसी बड़े बाप के बेटे न थे। उनके पिता पं. सीताराम तिवारी मूलत: उत्तर प्रदेश के जिला उन्नाव के ग्राम बदरका के रहने वाले थे और संवत् 1956 (1899) में देशव्यापी अकाल के समय जीविकोपार्जन के लिए घर से निकल कर भावरा में सरकारी बाग़ की रखवाली का काम करने लगे थे। वेतन पाँच रुपया मिलता था जिस पर ही वे अपनी पत्नी और एक बच्चे का (आज़ाद के सबसे बड़े भाई शुकदेव, जो बदरका में ही पैदा हुए थे) पेट पालते थे। उनका यह वेतन बढ़कर बाद में आठ रुपये मासिक तक हो गया था। आज़ाद का जन्म भावरा में ही ही टूटी-फूटी बाँस के टट्टरों में हुआ था। पिता जी कुछ विशेष पढ़े-लिखे न थे। माता जी तो बिल्कुल निरक्षर ही थीं। आज़ाद बचपन से ही तेजस्वी, कर्मशील और नटखट थे। ग्राम में पास-पड़ोस के लड़कों में तो वे नेता स्वभावत: ही बन गए थे। अपने नटखटपने के कारण वे प्राय: अपने पिता के कोप-भाजन बनते थे। जिनकी चार सन्तानें मर चुकी हों ऐसी माता के वे लाडले थे ही।... एक दिन किसी बात पर पिता से मार खाकर आज़ाद घर से भाग निकले...उन दिनों सन 20-21 का सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। बालक आज़ाद उसके प्रति आकर्षित हुए और बढ़- चढ़ कर काम करने लगे। नेताओं का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ। सत्याग्रह आन्दोलन में अपनी कम उम्र के कारण उन्हें बेतों की सज़ा मिली जो उन्होंने बड़ी बहादुरी से भुगती तथा श्रीप्रकाश जी से उन्होंने 'आज़ाद' उपनाम पाया। सन् 20-21 का सत्याग्रह समाप्त हो जाने के बाद काशी में श्री मन्मथनाथ गुप्त आदि के सम्पर्क से वे गुप्त क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हुए। अमर शहीद पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' के नेतृत्व में उन्होंने काकोरी ट्रेन काण्ड में भाग लिया और सन् 1925 में काकोरी षडयन्त्र केस से फ़रार होकर

झाँसी आये। झाँसी और ओरछे के बीच सातार नदी के किनारे पर एक कुटिया में वे हरिशंकर ब्रह्मचारी बन कर रहे। यहीं से उन्होंने दल के छिन्न-भिन्न सूत्रों को फिर से जोड़ लिया और क्रान्तिकारी दल के नेता के रूप में अमर शहीद भगतसिंह आदि से मिलकर उन्होंने उस दल का संगठन और संचालन किया जिसके प्रमुख कार्य लाहौर में लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज करने वाले ए.एस.पी. साण्डर्स का वध, दिल्ली की असेम्बली में बम विस्फोट तथा वायसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट करना थे। सन 1931 की फरवरी की 27 तारीख़ को वे इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस से एकाकी युद्ध करते हुए शहीद हुए।"

परन्तु आज़ादी के इतने सालों बाद आज इस फ़ासीवादी दौर में जब 'चन्द्रशेखर आज़ाद' और 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' की विरासत को भुला देने की साज़िशें की जा रही हैं तब ऐसे समय में आज़ाद को उनके 94वें शहादत दिवस पर याद करने का हमारा मक़सद यही है कि हम उनके सपनों को पूरा करने के लिए उठ खड़े हो! आज़ाद ने एक ऐसे इंक़लाब का सपना देखा था, और एक ऐसे समाज के लिए लड़ रहे थे 'जहाँ इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण ख़त्म हो जाये, जो लोग सुई से लेकर जहाज तक सब कुछ बनाते है उनके लिए ही सारी सम्पदा हो,उनका ही राजकाज हो!' आज़ाद और उनके साथी महज़ अंग्रेज़ों से आज़ादी नहीं चाहते थे, बल्कि हर प्रकार की लूट और शोषण से आज़ादी चाहते थे। आज के समय में मज़दूरों और युवाओं को आज़ाद से जो एक बात सीखनी होगी वह है इस उसूल में यक़ीन की मज़हब-धर्म सबका निजी मसला है। इसका आपके सामाजिक जीवन और राजनीति से कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए। जैसा कि आज़ाद के साथी शहीदे-आज़म भगतसिंह ने साफ़ कहा था, धर्म पर हम अलग-अलग व्यक्तिगत आस्था रख सकते हैं, या हम नास्तिक हो सकते हैं, इसके बावजूद हमारी राजनीति हमारे वर्गीय हितों से तय होती है। मज़दूरों का एका मज़दूरों-मेहनतकशों से बनता है; पूँजीपतियों, व्यापारियों, दलालों का एका पूँजीपतियों, व्यापारियों, दलालों से बनता है। न तो सारे पूँजीपति धर्म पर एक निजी आस्था वाले हो सकते हैं, और न ही मज़दूर-मेहनतकश धार्मिक तौर पर एक आस्था वाले हो सकते हैं, इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। मज़दूर कमज़ोर इसलिए पड़ते हैं, कि पूँजीपति आपस में तो धर्म को अपनी लूट के आड़े नहीं आने देते, लेकिन मज़दूरों को वे मन्दिर-मस्जिद पर लड़ाकर बाँट देते हैं, ताकि उन पर राज कर सकें। आज मोदी सरकार अपने साम्प्रदायिक फ़ासीवादी षड्यन्त्रों के ज़रिये यही तो कर रही है। आज़ाद को सच्चा इंक़लाबी सलाम तभी पेश किया जा सकता है, जब आज की लुटेरी ज़ालिम सरकार के खिलाफ़ संघर्ष का बिगुल फूँका जाय।

आज़ाद का सपना आज भी पूरा नहीं हुआ है। जिस "बाँटो और राज करो" कि नीति के ख़िलाफ़ उनकी लड़ाई थी उसी नीति को आज हमारे देश के हुक्मरान इस्तेमाल कर लोगों को बाँटने और लड़वाने का काम कर रहें है। जिस आज़ादी के सफ़ीने को बढ़ते जाना था वह आज ठहराव का शिकार है। हमारे चारों तरफ़ फैले इस ठहराव और निराशा को दूर करने के लिए आज युवाओं और मेहनतकशों को आगे आना होगा और एक बार फ़िर लोगों की रूह में क्रान्ति की स्पिरिट को ताज़ा करना होगा।

"शहादत थी हमारी इसलिये कि
आज़ादियों का बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या? ये अँधेरा!
ये कारवाँ रुका क्यों है?
चले चलो कि
अभी काफ़िला-ए-इंक़लाब को
आगे, बहुत आगे जाना है..."

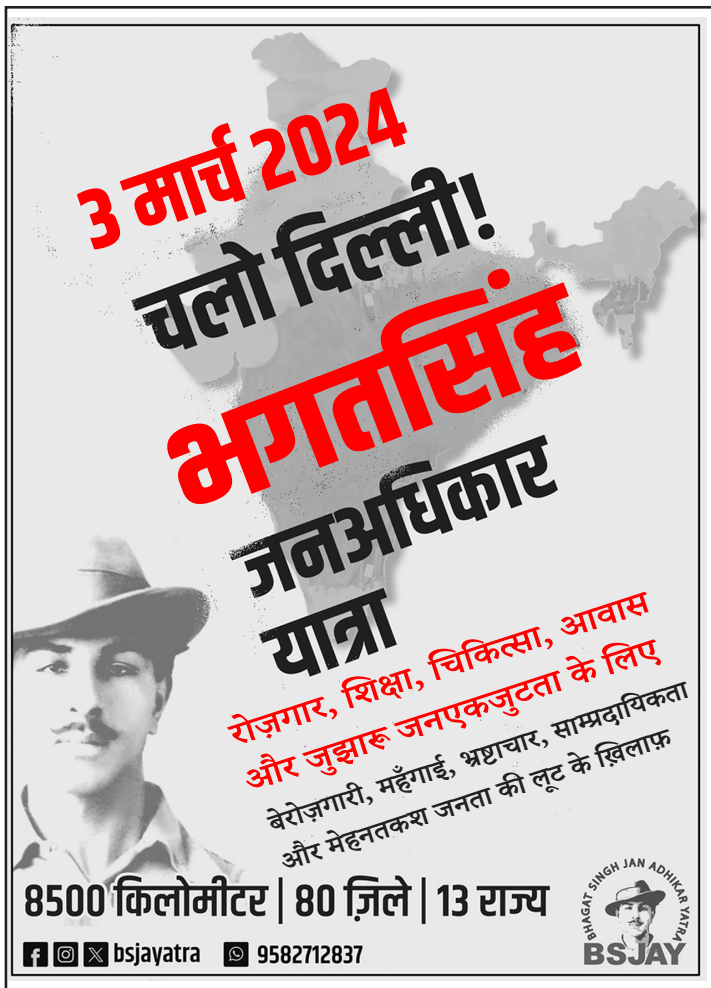

भगतसिंह की बात सुनो, नयी क्रान्ति की राह चुनो!
शिक्षा और रोज़गार, हमारा जन्मसिद्ध अधिकार!!

हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई, सबको मार रही महँगाई!
जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो!!

साथियो, 10 दिसम्बर 2023 को बेंगलुरु से शुरू हुई यह यात्रा 13 राज्यों के 80 से ज़्यादा ज़िलों से गुज़रकर बदलाव के लिए उठ खड़े होने का अपना पैग़ाम देते हुए 3 मार्च को दिल्ली में बैठे हुक्मरानों के माथे पर दस्तक देने पहुँच रही है। जितने ज़्यादा लोग हमारे साथ होंगे हमारी आवाज़ उतनी ही बुलन्द होगी और इस बहरी सरकार के कानों में उतनी ही ज़्यादा चुभेगी। इस यात्रा में शामिल होने के लिए बगल के पोस्टर में दिये नम्बर पर हमसे सम्पर्क करें। आज ही!

हमारी प्रमुख माँगें

- रोज़गार के अधिकार को मूलभूत अधिकारों में शामिल किया जाये। 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' को संसद में पारित किया जाये। सभी योग्य नागरिकों को 365 दिन काम की गारण्टी अथवा ₹10,000 प्रति माह बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। सभी रिक्त सरकारी पदों पर भर्ती की जाये।
- सभी श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाये। नये प्रस्तावित 'लेबर कोड्स' को रद्द किया जाये।
- महँगाई पर नियन्त्रण के लिए जमाख़ोरी, वायदा कारोबार (फ़्यूचर्स ट्रेड) व सट्टेबाज़ी पर रोक लगायी जाये। बुनियादी वस्तुओं व सेवाओं के वितरण की व्यवस्था का राष्ट्रीकरण किया जाये।
- शिक्षा के अधिकार को मूलभूत अधिकारों में शामिल करो। जनविरोधी 'नयी शिक्षा नीति 2020' को रद्द किया जाये।
- सच्चे सेक्युलर राज्य को सुनिश्चित करो, किसी भी सरकार, पार्टी व नेता द्वारा धर्म, समुदाय अथवा आस्था का सार्वजनिक जीवन में उल्लेख दण्डनीय अपराध घोषित किया जाये।

भगतसिंह जन अधिकार यात्रा के बारे में और जानने, हमारा पूरा माँगपत्रक और पर्चा पढ़ने और अलग-अलग राज्यों में हमारे साथियों के सम्पर्क सूत्र देखने के लिए ऊपर दिया QR कोड स्कैन करिए –

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016